

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180188

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/853Re Accession No. G.H. 2233

Author राम, पंडित बेचन 'उग्र'

Title रेहमा 1 2004 v-5.

This book should be returned on or before the date last marked below.

रेशमी

[कहानी-संग्रह]

लेखक

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'



मिन्नने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रकाशक
श्रीदुलारेबाब
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दि ह्वी-ग्रंथागार, चर्खेवाली, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्यरत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास
९. श्रीकन्हैयालाल, त्रिपोलिया-बाजार, जयपुर
१०. हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हीराबाग, पो० गिरगांव, बंबई

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेबाब
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ



वक्तव्य

(प्रथमावृत्ति पर)

‘उग्र’जी का स्थान गद्य-लेखकों में बहुत ऊँचा है। सुंदर, सजीव, मुहाविरेदार भाषा लिखने में वह अपना सानी नहीं रखते। उनके गद्य का चमत्कार देखना हो, तो यह कहानी-संग्रह अवश्य पढ़िए। कागज का मूल्य तिगुना और छपाई का ड्योढ़ा हो जाने पर भी हमने तादृश मूल्य नहीं रक्खा। आशा है, हिंदी-संसार हमारी इस पुस्तक को हाथों-हाथ अपनाएगा, जिसमें हम शीघ्र ही ‘उग्र’ जी की दूसरी पुस्तक ‘पंजाब की महारानी’ लेकर सेवा में उपस्थित हो सकें।

कवि-कुटीर, लखनऊ }
२३।७।४२ } सावित्री दुलारेलाल

वक्तव्य

(द्वितीयावृत्ति पर)

हमारी आशा ठीक निकली। इस पुस्तक को हिंदी-संसार ने खूब अपनाया, जिससे इसका पहला संस्करण ६ महोने में ही बिक गया। अब यह दूसरा संस्करण निकाला जा रहा है।

शिक्षा-प्रसार-ऑफिसर ने भी इसकी यथेष्ट प्रतियाँ खरीदीं। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

‘पंजाब की महारानी’* भी निकल गई है। आशा है, उसे भी हिंदी-भाषा-भाषी पसंद करेंगे।

कवि-कुटीर, लखनऊ }
१७।३।४३ } सावित्री दुलारेलाल

* यह पुस्तक ज़ब्त है। इसके पुनः प्रकाशन के लिये हम कांग्रेस-सरकार से लिखा-पढ़ी कर रहे हैं।

श्रेष्ठ उपन्यास-कहानियाँ

अप्सरा	२॥१, ३॥	बिदा	४॥, ४॥॥
अलका	२॥, २॥॥	विराटा की पद्मिनी	३॥, ४॥
अमिताभ	४॥	भाई	१॥, २॥
अमृत	१॥, १॥॥	मा (दो भाग)	५॥, १॥॥
आत्महत्या	१॥१, २॥	मिस्टर व्यास की कथा	
अँधेरी रात	१॥॥		३॥, ३॥॥
एक सूत्र	३॥	यही मेरी मातृभूमि है	
कुंडली-चक्र	२॥, २॥॥	लगभग	२॥
केन	१॥, २॥	रंगभूमि (दोनों भाग)	
कोतवाल की करामात	१॥, २॥		५॥, ६॥
गढ़-कुंडार	४॥, ४॥॥	लगन	१॥, २॥
चित्रशाला (दो भाग)	२॥, ४॥	वाटिका	॥, ॥॥
चंद्रगुप्त	५॥	विजया	२॥, ३॥
जागरण	३॥॥, ४॥	विक्रमादित्य	५॥
नवाब लटकन	२॥	विचित्र योगी	१॥१, २॥
निरंजन शर्मा	लगभग २॥	मौ अज्ञान और एक	
प्रेम-पंचमी	१॥, २॥	सुजान	१॥, १॥॥
प्रेम-द्वादशी	१॥, २॥	मंसार-हृदय	१॥॥, २॥
प्रेम की भेंट	१॥१, २॥	हृदय की परख	१॥, २॥
बाहर-भीतर	१॥, २॥	हृदय की व्यास	३॥, ३॥॥

हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

गंगा ग्रंथागार, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ

भूचा

	पृष्ठ
१. रेशमी	६
२. प्रार्थना	१४
३. रिमर्च	१८
४. विकास	२३
५. बेईमानचंद और ईमानसिंह	२७
६. "वाह होली ! आह होली !!"	३४
७. भ्रम	४४
८. अमली कुत्ता	५५
९. अवतार	५६
१०. सुधारक	७०
११. रामदाने के लड्डू	७६
१२. चौड़ा छुरा	७६
१३. मुक्ता	८२
१४. मोंको चूनरी की माध	८०
१५. पिशाची	८५
१६. टीला और गड्ढा	१०७
१७. संगीत-समाधि	११४

आवश्यकता है

हिंदी के श्रेष्ठ बालोपयोगी, नवयुवकोप-
योगी, स्त्रियोपयोगी और पुरुषोपयोगी
पुस्तकों और बाल-विनोद तथा सुधा का
भारत-भर में प्रचार करने के लिये प्रत्येक नगर
और कसबे में हिंदी-पढ़े संगठनकारी क्लबों,
कन्वेंसनों, पार्ट-टाइम कन्वेंसनों, एजेंटों,
बुकसेलरों और पत्र-विक्रेताओं की ।

सबके नियम हमसे मँगाकर अपना
कालतू वक्त साहित्य के पुण्य प्रचार में
लगाएँ, और थोड़ी हिंदी-पढ़े, तेज सज्जन ५०)
से १५०) तक महीना कमाएँ—

है हिंदी ही पर भविष्य भारत का निर्भर ;
देश-भलाई करें पुस्तकों का प्रचार कर ।

(श्रीमती) सावित्री दुलारेलाल (एम्० ए०)

संचालिका गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

रेशमी

जब मेरा दोस्त सैरे-चमन को निकला, दिन थे पतझड़—
खिजाँ—के।

वह अद्भुत अल्हड़ ऊबड़-खाबड़ पथ से चला, हाँ, वन-
बीहड़ की ओर।

उसके चंचल चरण वज्र-से चमकीले, नीलमणि-से नीले।
पथ के उपलप्राण मेरे यार के चरणों की चमक से चौंकर
चैतन्य हो उठे।

“प्रकाश... आया...!”



विश्वास के अनुसार फल... ‘प्रकाश’ की भावना होते ही
जंगली रास्ते की सारी अटपटता, अँधेरी रात-सी, दूर हो गई,
और दिव्य गगन-पथ की तरह मेरे यार का रास्ता जगमग
हो उठा।

सूरज-सा मुँह मेरे यार का, चाँद-सा माथा, दिन-सी दीप्त
देह, रात-सी रहस्यमयी अलकें! उस रसीले की एक-एक
साँस आबे-हयात...

उकठा जंगल सिहरने, लहराने लगा। हरियाली हँसने लगी।

मेरे यार की पेशवाई में मौसमे-बहार भी बसरोचश्म बेकरार
उस उजड़े दयार में दौड़ती आई ।

उकटे काठ रसाल बने । सूखी लतिकाएँ नई नागरियों-सी
बल खाकर, माथे पर फूल सजाकर, स्नेह से सुगंधित, मुस्करा-
कर मेरे यार का रुखसार सौ-सौ बार निहारने लगीं ।

दरख्तों ने अपने हरे दिल में सोचा—काश मैं सिंहासन
होता, या चौकी या कुर्सी, जिस पर वह आकत का परकाला
क्षण-भर विश्राम तो करता, और इसी वहाने वस्त्रोपाहत होती ।

फूलों ने विचारा—आह ! अगर हम गुलदस्ते या गजरे
होते, तो इस बाँके-छवीले के 'सामीप्य' का सुख हमें स्वर्गीय
मिलता ।



उन्हीं फूलों और दरख्तों के पड़ोस में, एक पत्ते पर, एक
कीड़ा रहता था । नन्हा, नगण्य । उसकी टिमटिम आँखों में
भी कहीं मेरे यार का रंग छा गया ।

“मगर” प्रेमोन्मत्त कीड़े ने सोचा—“मेरी रसाई...ओह !
मैं किस तरह इस विश्वमोहन का बनूँ ? मैं तो वृक्ष-सा
महान् नहीं, पुष्प-सा दिव्य और पावित्र नहीं—आह ! मैं
बीहड़ बाट की तरह कठोर भी नहीं !”

“आह ! आह !” मेरे यार के वियोग में वह नन्हा कीड़ा
(हिमाकत तो देखिए !) एक पत्ते की विसात पर सिर धुनने
लगा ।

वह सिर धुनता रहा अपनी क्षुद्रता पर, असमर्थता पर, लेकिन उसकी यार से मिलने की भावना दृढ़ से दृढ़तर होती रही ।

चंद दिनों बाद कीड़े ने सिर धुनते वक़्त आह ! आह ! चिल्लाना बंद कर दिया, और अब सिर धुनता उसका स्वभाव हो गया । ‘किनी के लिये’ सिर धुनने में उसे ‘मज्जा’ आने लगा ।

और तकलीफ़ में मज्जे को भावना होते ही वह क्षुद्र कीड़ा चैतन्य हो उठा ! उसमें वह योगिक ज्योति जाग उठी, जिसके अनुभव से आदमी पैगंबर हो जाता है ।

विश्व के परम तत्त्व दुःख म खेज़ते ही वह कीड़ा आत्म-ज्ञानी, जीवन्मुक्त—याने ‘भित्तु’ से ‘अर्हत’ हो उठा ! उस ही क्षुद्र काया में ज्योतिर्मयी धाराएँ फूटने लगीं ।

“यार की राह में ख़वार होने का ऐसा ज़लंत उपहार ! अ-ह-ह-ह !” वह आरं भी तेज़ी से सिर धुनने लगा । और, किरणों के डोरे उसके तन पर जलवानुमा पैंरहन पहनाने लगे ।

कीड़े ने सोचा—“यही मेरी तपस्याओं का अमृत-फल है । ये चंद उज्ज्वल तार मेरे दिल के संदेश हैं । मेरे प्रेम के दिव्य फल ! काश ये तार मेरे यार के गले तक पहुँच सकते—या हाथ ही तक !”

सिद्ध हो जाने पर भी ‘यार’ की वासना उस कीड़े के मन

से न गई ! वह सिर धुनता ही रहा । उसे विश्वास था कि वस्त्र होकर ही रहेगा । और, आखिर एक दिन दिव्य तारों के महल में आहों-भरा जीवन उस कीड़े को दोजख की तरह गर्म मालूम पड़ने लगा !

और गर्मी बढ़ती रही, जीवन खौलता रहा, मगर वह साधक कीट यार की याद में ऐसा लीन था, जैसे पानी में मीन । और जीवन की ज्वाला कठोर थी । कीड़ा—सुकुमार, कहाँ तक सिर धुनता । आखिर समाप्त हो गया !



उस दिन मेरा यार मौसमे-बहार-सा सजकर—सिर पर मुकुट, गले में हार पहने—सिंहासन पर आसीन था । करिश्ते उस पर चवर भल रहे थे । एक अजीब हुस्नोजमाल का समा बँधा हुआ था ।

उसी वक्त पूरब की ओर से तीन चुनी गंधर्व-सुंदरियाँ, स्वर्गीय गति से, एक बड़ा थाल हाथ में सँभाले मेरे यार के सामने अदब से हाज़िर हुईं ।

“हुज़ूर...की सरकार में...”

“क्या है सुंदरियो ?”

“दिल एक मस्त, मनचले अनुरागी या विरागी का । विश्वमोहन ! यह भी तुम्हें चाहता है ।”

“चाहता है कौन मुझे ?” सरस छलककर बोल उठा मेरा यार—“देखूँ ज़रा मुँह तो !”

तीनो स्वर्गीय सुन्दरियों ने उस बड़े थाल को मेरे यार के सामने पेश किया ।

उसमें क्या था ?

एक नन्हा-सा रुमाल! चमचम चमकीला—पारदर्शी प्राणमय!

“वाह ! धन्य ! अद्भुत है दिल यह दिव्य अनुरागी का, त्यागी का ।”

और, मेरे यार ने इंद्रधनुष-से मुस्किराते अपने रंगीन ओठों की तरफ उस नन्हे कीड़े के प्राणोंको जब उठाया—तीनो गंधर्व-बालिकाएँ और दसो दिशाएँ एक स्वर से गा उठीं—

“पेड़ ने यार का आसन बनने के लिये तपस्या की—अपने कलेजे पर आरे चलवाए ।

फूल ने उसके निकट रहने के लिये अपनी छाती छलनी-सी छिदाई ।

मगर; इस कीड़े का प्रेम—इसकी साधना तो अद्भुत ! बहुत छोटे-से बहुत बड़े तक पहुँचने के लिये इसे बहुत सिर धुनना पड़ा । बहुत बड़े नारकीय जीवन में जलना—उबलना पड़ा !

और आज, इस मौसम-बहार में, मेरे यार ने उस खाकसार जाँनिसार की जो इज्जत की, उसे देखो तो ! दुख में बड़ा बल है । किसी के लिये सिर धुनने में बहुत असर है । सर्वस्व त्याग में चिर अनुराग की मादकता है—देखो तो...!

मेरे यार के रसीले ओठों के पास क्या है ?

“एक रुमाल—रेशमी !”

प्रार्थना

एक दिन मनुष्य के मनोमंदिर में मशहूर-जहान श्रीमान् भगवान् की भक्ति जोर-शोर से भभक उठी।

अभाव से कि भाव से ? किस प्रभाव से भगवान् की भक्ति भभकी ? इंसान के स्वभाव को इसका कुछ भी ज्ञान या भान न हो सका।

वह तो आँखें मूँदकर इस अंधकार में भी सरपट !—भगवान् के अनुसंधान में हैरान-परेशान दौड़ने लगा !

और (मनुष्य के शब्दों में) ‘बाधाएँ’ सामने आईं ।

महानद और समुद्रों ने मनुष्य का रास्ता बंद कर दिया। पहाड़—महिमालय हिमालय-से—उसके सामने खड़े हो गए।

“क्यों भाई मनुष्य !” उन्होंने प्रश्न किया—“एक ही माया के विस्तार तो हम सभी हैं। मगर हमें तो उसकी मुतलक तलाश नहीं। हम तो चुपचाप अपना कर्म करते हैं।

“आखिर तुमको भगवान् की जरूरत है क्यों ?

“तुम्हारा मुद्दा मतलब-क्या है ?”

“मतलब ?” मनुष्य ने बाधकों को जवाब दिया—“मतलब केवल प्रभु के दर्शनों से है। हे समुद्र ! पीछे हटो। हे हिमालय !

रास्ता दो। सच कहता हूँ—मैं प्रभु के दर्शन कर अपना जन्म केवल—फ़क़त—कृतार्थ करना चाहता हूँ। इस 'मजे' में जो 'लुत्क' है—हे जड़-महानो !—उसे तुम नहीं समझ सकते।"

मनुष्य का ओजस्वी तर्क-अर्क देखकर समुद्र 'सहारे'-सा सूख गया !

हिमालय का कलेजा दर्ग और घाटियों के रूप में दरक उठा !

मनुष्य को रास्ता मिला !

और, हमने बुज्जों से गुना है कि काकी हैरान-परेशान होने के बाद उसे भगवान् का सहो 'एड्रेस' भी मिला ही !

एक दिन—अनेक देश के पुराण एक स्वर में गाते हैं—
मनुष्य और भगवान् दोनों आमने-सामने नज़र आए !

भगवान् को देखते ही मनुष्य ने खीसों काढ़, बतीसों दिखा, सजल-सफल निवेदन किया—

"मेरे इष्टदेव ! आप पूरे कम्युनिस्ट याने दीनबन्धु हैं। मैं आपका निःस्वार्थ भक्त हूँ। कृपया मुझे अपने शक्तिशाली-दल में मिलाकर पहले तो 'कामरेड' बना दीजिए। दूसरे, मुझे 'जरामरणजं भयम्' से ऊपर या दूर कर दीजिए। तीसरे, मुझे लखनऊ-सो लहर-बहर दीजिए। चौथे, पेरिस-सा एक शहर दीजिए। पाँचवें, 'पनामा' या 'स्वेज़'-सी कोइ नहर दीजिए। क्रीड़ा का क्रहर दीजिए। अमृत का ज़हर दीजिए।"

गरज़ यह कि एक ही साँस में निःस्वार्थ मनुष्य ने भगवान् से चार आँखें होते ही, सातों समुद्र और चौदहों भुवन जाँच लिया।

भगवान् भौंचक ! मनुष्य की कामनाओं का 'कलेंडर' देखकर सिर खुजलाने लगे !

और भगवान् के माथे पर मनुष्य से हैरान जहान को शिकन के निशान नज़र आए ।

उन्होंने वज्र-स्वर से तड़पकर जवाब दिया—“तू किससे माँगता है मूर्ख ! मैं तो देने-लेने के झगड़े और कामना-वासना की कहानियाँ बिलकुल नहीं जानता । ‘मैं’ या मेरी सृष्टि-समस्त का कोई, तुझे कुछ भी नहीं दे सकता । शक्तियाँ माँगने से नहीं मिलती और न देने से दी जा सकती हैं । वे तो साधना से—अनवरत, भीष्म तप से ही साध्य हैं !

“तू तप कर आदमी ! भीख न माँग !

“यहाँ या वहाँ कोई किसी को कुछ भी नहीं दे सकता.....

“मेरे सनातन विधानों का यही सुक्रम है । हट सामने से ! खुदगर्ज !”

मगर मझांध मनुष्य भगवान् के मुक्ताबले में एक ईंच भी पीछे न हटा ।

उसने भी भीषण तोपों के स्वरों में उत्तर दिया—

“अपनी ही करनी से उतरेंगे पार, तो फिर हम करतार, करतार तुम काहे के ?

“तुम ‘दिल को खुश रखने के ‘खयाल’-मात्र हो । तब तो असल तत्त्व मैं हूँ मैं ।

“फिर तुम्हारी पूजोपासना कैसी ? ईंटें बनाऊँ मैं, दीवारें

सँवारकर मंदिरोमसजिद बनाऊँ मैं—और पूजा-नमाजें हों तुम्हारी ? वाह रे विचित्र विदेशी !

“हो चुकी ! अब मैं तेरा विरोधी हूँ, विभक्त-भक्त । अनुरक्त नहीं । विरोध जीवन है । भक्ति निम्न-समर्पण ! तू कुछ नहीं है । तेरा ‘मार्केट-वैलू’ उठ गया । अब तेरे अड़े ज़हरीले कीड़ों की तरह भयानक तोपों से उड़ा दिए जायँगे । भगवान् मायावी !

“अब तेरे नामोनिशान, सतहे-जमीन से मिटाकर मैं दम लूँगा ।

“अब दिखला-बतलाकर दम लूँगा कि मैं कौन हूँ !” ;

मनुष्य मनस्वी, तिनककर, भगवान् से विमुख हो गया !



और, बात मानिए, भगवान् का सिंहासन हिलने लगा !
बेचारे बूढ़े भगवान् ने माथा अपना पीट लिया निराश होकर मनुष्य से ।

और, उसी मुहूर्त से इस ‘सेकंड’ तक फिर कभी मनुष्य भगवान् की माया में न फँसा ।

बेचारा बूढ़ा भगवान् टका-सा मुँह लिए मनुष्यता के मैदान में गहरी शिकस्त खा...

आदमियत से दूर—सुदूर...

भाग गया !—अह !

करो ! मैं आसमान को ज़मीन पर उतार सकता हूँ । सोने की बरसाती झड़ी लगा सकता हूँ । इस नन्हे-से संसार को अपने किसी भी भक्त की मुठ्ठी में कर सकता हूँ । देखा ! बालक बाँसुरी बजाता हुआ, अब तो, दूर चला गया—मुझे देर हो रही है ।”

उत्सुक मनुष्य सुंदर बालक की ओर झपटा उसका खून करने के लिये !



शैतान और बाँसुरीवाले बालक के बीच में जो पेड़ों का एक झुरमुट था, वही इंसान को भगवान, विना बुलाए, बेतलाश मिले ।

“कहाँ सनके जाते हो ?”

“बाँसुरीवाले का गला टीपने !”

“शैतान की इच्छा से—क्यों ?”

“ज़बान सँभालो ! वह शैतान नहीं, संसार का महाम्राट् है । शाहंशाह के राज में विद्रोही ? तू कौन है ? हट ! मैं राजसेवा में इस समय तत्पर हूँ ।”

“सावधान ! नादान इंसान ! पछताएगा शैतान के चक्कर में पड़ । संसार का सम्राट् वह नहीं, मैं हूँ—भगवान !”

“तू सोने की झड़ी लगा सकता है ?”

“सोने की झड़ी से पानी की बरसात विशेष जीवन देती है । सोने के चंग पर चढ़कर लोग नरक जाते हैं, इसीलिये

उसे मैंने लोगों की आँखों से दूर पहाड़ और पृथ्वी की छाती में छिपा दिया है।”

“हिः ! गप्पी !! अच्छा, स्वर्ग को तू पृथ्वी पर उतार सकता है ?”

“मैं न तो आसमान को जमीन पर उतारता हूँ और न पृथ्वी को पाताल पर। किसी को पद-भ्रष्ट करना शैतान का काम है।”

“चल ! जिसमें चमत्कार नहीं, मैं उसे भगवान नहीं मानता। मैं चमत्कार देखूँगा। हट सामने से !”

भगवान को—बात मानिए—ठुकराकर मनुष्य शैतान के इशारे से हत्या के लिये दौड़ पड़ा।

✱

✱

✱

सुन्दर बालक की मुरीली बाँसुरी एकाएक बंद हो गई ! हवागाड़ी वाले शैतान के स्फटिक-पात्र की मदिरा का रंग श्वेत से रक्त-सुवर्ण हो गया।

हत्या करते ही मनुष्य की पीठ पर शैतान का हाथ थपक उठा ! वह जरा भी न डरा। स्वार्थ के लिये खून करने से उसका दिल ठंडा, सख्त और मजबूत हो गया।

“मुर्दे के ठीक नीचे गहरा खोदो।” शतान ने परम प्रसन्न हो मनुष्य से कहा—“इस खोदाई में तुम्हें सोने की खान मिलेगी। इस खान की मदद से तुम अमीर बनो, फिर जुआ, शराब, सुन्दरियाँ और हत्या-विनाश दिन-रहाड़े

करो ! इन्हीं तीव्र सत्कर्मों से मैं संतुष्ट रहता हूँ । मेरे राज में, मेरी कृपा से, तुम्हारा कोई बाल भी वाँका न कर सकेगा !”

“आप महान् शैतान हैं !” कृतज्ञ मनुष्य ने कहा ।

“तू भी मेरा भाई है, मनुष्य !”

मुस्किराकर शैतान ने इंसान को जवाब दिया, और उस अर्द्धनग्न-मृंदरी को चूमता, बालक के शव को हवागाड़ी से कुचलता वह चलता बना !

विकास

समुद्र का हाहाकार सुनकर या वज्र का गर्जन, भूकंप का महासहार देखकर या ज्वालामुखी का स्फुलिंगोद्वार अथवा आकाश का विस्तार कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। मगर एक दिन मनुष्य के मन में विश्वनियंता, विश्व-विनाशक, विश्वनाथ, ईश्वर की पूजा और स्मरण के लिये एक मकान बनाने की इच्छा हुई।

ईश्वर की सृष्टि का ही अनुकरण करते हुए मनुष्य ने अपनी रचना शुरू की।

लंबे, मोटे वृक्षों की नक़ल में उसने खंभे बनाए। उँचाई पहाड़ों की नक़ल की, गुंबद बनाया आसमान के अनुकरण पर, और 'ईश्वर का घर' एक दिन मनुष्य ने तैयार कर लिया।

मनोवाञ्छित फल पाने के लोभ में मंदिर के लिये भगवान् की एक मूर्ति भी गढ़ी गई !

और, आदमी कुटुंब और कुनबे के साथ पूजा करने लगा।



मगर पत्थर न पसीजा। आदमी की इच्छा, एक भी, ईश्वर या उस मूर्ति की कृपा से पूरी न हो सकी।

सकुटुंब, सारी शक्तियों का स्नेह बनाकर मंदिर में जला देने पर भी जब आदमी को अपने पथ पर प्रकाश नज़र न आया, तब वह मंदिर की महिमा में संदेह करने लगा।

“किसी बुरी घड़ी में मैंने इसे बनाया था क्या ? इसकी बनावट में ऐसी कोई भूल तो नहीं रह गई, जिससे ईश्वर इसमें आते ही न हों ?

“तो ? तो क्या सारा परिश्रम पानी में गया ? नहीं-नहीं। मैं हारनेवाला नहीं। मैं दूसरा मकान तैयार करूँगा।”



आदमी ने दूसरा मकान तैयार किया—बिल्कुल नए ढंग का। ईश्वर की मूर्ति में भी किंचित् परिवर्तन कर उसे दूसरे रुख, दूसरी वेदी पर बैठाया। इस घर का नाम पड़ा—गिरजाघर।

श्रद्धा, विश्वास, लोक और परलोक के सपने देखता आदमी ‘अपने’ लिये गिरजाघर में भगवान को फँसाने की कोशिशें करने लगा। मुट्ठी में हवा को थामने की !

मगर युगों तक धूप-दीप जलाने पर भी जब भगवान् की आहट न लगी, तब आदमी बहुत चबराया !

उसका विश्वास (आँधी में पीपल के पत्ते-सा) थराने लगा।

“यह मंदिर—छिः !” उसने सोचा—अफीमची का अड्डा है—ईश्वर का विश्राम-स्थल नहीं। यह मूर्ति ! कठोर पत्थर

है पत्थर—मैं इन दोनों को मलियामेट कर, अब एक ऐसा घर बनाऊंगा, जिसमें ईश्वर के निराकार रूप की पूजोपासना की जा सके। बिना उसकी पूरी खबर लिए मैं मान नहीं सकता।”



नई मिट्टी और नए जीवन से मनुष्य ने एक नया मकान—गुंबददार, स-मीनार तैयार किया—मस्जिद।

वही, सपरिवार एकत्र हो अब आदमी उस निराकार परवरदिगार की नमाजें पढ़ने लगा, जिसके एक आकार को, चंद दिनों पहले, तैयार करने के बाद उन्हीं हाथों उसने बिगाड़ दिया था।

घुटने टूटे, माथा फूटा—सिजदों में! नमाजों में रातें गईं, दिन गए! मगर ‘मतलब’ आदमी का न हुआ। हाय रे!

देरान वह, माथे पर हाथ रख, लंबी साँसें ले गाने लगा—

“खुदा ही मिला न विसाले-सनम—

न इधर के हुए, न उधर के हुए...!”



इस बार सारा खाक-पत्थर, सारी माया जोड़कर मनुष्य ने ‘लेटेस्ट डिजाइन’ का एक मकान तैयार किया—

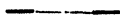
नाम रक्खा—‘जनरल स्टोर्स’। और अब मनुष्य इस नए मकान में भयानक व्यापार करता है। सुबह से शाम तक खरीदारों की रेल-पेल से उसे फुर्सत नहीं। वह रोज ही

अंजली-भर सोना कमाता है । उसकी तिजोरियाँ रत्नों से भरी हैं अब तो !

और अब तो, आदमी 'बिजनेस' से इतना 'बिज्जी' रहता है कि—

मंदिर, चर्च या मस्जिद की बनावट या चर्चा से उसका कोई भी 'इंटरेस्ट' नहीं !

रहे ईश्वर—सो, ईश्वर तो अब मनुष्य ऐसे को मानता है !



बेईमानचंद और ईमानसिंह

कसूरवाला कोई शरीर...?

जी ! सामने जो फौलादी मकान है, वह बारूद की कोठरी तो नहीं; हाँ, सेठ बेईमानचंद बाबूलाला का खजानाघर है।

हाँ ! हाथ में संगान साधे जो रखवाला दिन-रात फौलादी मकान के सामने, घड़ी की मैग्नीट की तरह, घूमा करता है, वह फौज का सिपाही नहीं, सेठ बेईमानचंद बाबूलाला का नौकर है। पंजाब के कसूर-जिते का रहनेवाला—छोई शरीर, और बहादुर सिक्ख ईमानसिंह।

ईमानसिंह रखवाले को बेईमानचंद बाबूलाला बीस रुपए मासिक वेतन देते हैं। इसलिये कि वह उनके उस कोषागार की रक्षा करता रहे, जिसे उन्होंने प्राणों की तरह छिपाकर, बटोरकर रक्खा है।

बीस रुपयाँ से ईमानसिंह अपने उस शरीर को तगड़ा रखने की कोशिश करता है, जिसकी वजह से उसे रुपए मिलते हैं। और हर महीने दस रुपए अपने घर कसूर-जिते को मनीआर्डर करता है, जहाँ उसकी तरुणी सुंदरी प्रियतमा है, गुलाब-सा पाँच साल का एक लड़का और रात की रानी (हुस्नहिना) के सुगंधित गुच्छे-सी आकर्षक और साँवली एक कन्या है।

इतना हो नहीं, ईमानसिंह के छोटे भाई की मंद पढ़ाई और दमा से खाँसती बूढ़ी माई की दवाई की कीमत भी मनीऑर्डर के दस रुपयों में शामिल है !

(१)

जी ! गहरी कमाई बिना हराम-व्यापार के नहीं हो सकती । इसको समझने के लिये ज़रा-सी निःस्वार्थ बुद्धि और ईमान की ज़रूरत है ।

हाँ ! बेईमानचंद बाबूलाला की कमाई भी ठोस बेईमानी की है । अब तो प्रचंड पूँजीपति होने से उनके कुरूप में भी चमक आ गई है । नहीं तो बाबूलाला पहले सोनागाछी में किशती चलाया करते थे, और शरीर-विनाश पर जीवित रहनेवाली रंडियाँ और उनके सफ़रदाइयों को क़र्ज, अघेले से आना रुपया रोज़ाना तक सूद पर, देकर धोके की छाती में साँस की तरह दौड़-दौड़कर कौड़ी जोड़ते थे । इसके बाद उन्होंने नीमतल्ला-घाट के पास कफ़न और मुर्दा-दहन के सामान की एक दुकान की । फिर घर में पुलिस से मिलकर जुआ खेलाया । इसके बाद देशी रियासतों के रंगभवन में बाहर की 'ब्यूटियाँ' बटोरीं, कई दिवाले मारे, और लो ! बेईमानचंद का फ़ौलादी खज़ाना भर गया !!

और, दुनिया वर्तमान के आगे भूत या भविष्य को भूल जाती है । अब तो बाबूलालाजी पूरे रईस बन गए हैं । मंत्र उनके सभी चल रहे हैं, कोई भी पुराना व्यापार बंद या मंद

नहीं हुआ—मगर पैसे बढ़ जाने से 'पोज़िशन' बहुत बढ़ गया है। पुलिस तो मिली ही है, धीरे-धीरे पांडित लोग भी पापी से मिलते जा रहे हैं। और, वह बेईमानचंद अपना काम खूब समझता है। किसी सत्यवादी वृद्ध के विद्वान् ब्राह्मण को 'लोभी कुत्ता' समझकर वह 'चाँदी के ढेले' उसकी ओर फेंक देता है, और वह चुप हो भाग जाता है—दुम हिलाते !

इस माया-मिथ्यामयी दुनिया में सर्वगुणाः काञ्चनमा-अयन्ति" है—यह कैसा भयानक सत्य है !

(२)

जी ! सेठ बेईमानचंद के फौलादी खजाने की एक-एक कौड़ी बेईमानी से बटोरी हुई है, और बेईमान का महल तीन घंटे, तीन पहर, तीन दिन, तीन पक्ष, तीन मास अथवा तीन साल में जरूर दैव के कोप से दहलकर संकट में, चहले में फँसता है।

हाँ, उस दिन जंगली डाकुओं ने शहरी डाकू को लूटना चाहा। मगर फौलादी खजाने में कसूर-जिले के बीस रुपया बेतनभोगी सिक्ख ईमानसिंह को डाकू वैसे ही पहचानते हैं, जैसे आग को लोहा। उनको निश्चय था कि ईमानसिंह के रहते-रहते बेईमानचंद का खजाना हथे पर नहीं चढ़ सकता। डाकुओं ने ईमानसिंह के पास सोने का संदेशा भेजा—

“दस हजार अरफ़िया अभी लो, और लूट में हिस्सा भो—।”

“चल !” बिगड़ा कसूरवाला पंजाबी—“बेईमानी की बात बोलोगे, तो गोली से उड़ा दूँगा । मैंने फौज में काम किया है, मैं आग की बरसात में खेल चुका हूँ—सिपाही है ईमानसिंह, ओ डाकू ! बस भाग ही जा ।”

और डाकू भाग न जाता, तो बीस रुपए का नौकर इसकी जान पर टूट पड़ता—मारने-मरने को । किसके लिये ? समाज को तरकीबों से ठगनेवाले बेईमानचंद के लिये, बीस रुपए से अधिक हिंदू या सिपाही दिल पर पड़े ‘असरे-नमक’ के लिये ।

मगर डाकू भी माने नहीं । बारह बहादुर बंदूकबाज नक्काबपोश उस अँवैरी पिछली रात में फौलादी खजाने पर टूट पड़े । ईमानसिंह सजग था । उसने ललकारा । जवाब में एक गोली दनदनाती हुई उसके कान के पास से ‘पास’ हो गई ।

तुरंत ही फौलादी दीवार का ज़रा सहारा ले, ईमानसिंह भी गोलियाँ दागने लगा । अब तो डाकू-दल का नेता घबराया । ज़रा गौर कर दो जवानों को ईमान पर पीछे से और तीन को आगे से चपेटकर मार डालने का मंत्र दिया—और बाक़ी सात, मौक़ा पाते ही, खजाने पर टूटने को तैयार हो गए ।

(३)

जी ! बीस रुपए का ग़रीब नौकर बेईमानचंद सेठों की छप्पन करोड़ी-कोठरी की रक्षा करता है । इतनी छोटी रक़म के लिये मौत का निशाना कौन बनता है ? सिपाही । मगर

ओह ! 'सिपाही'—स्वधर्म के लिये बलिदान होने वाले—कुछ और हैं, बेईमानचंदों की रक्षा करनेवाले कुछ और । दोनों में पत्थर और सोने का अंतर है ।

हाँ ! उस अँधेरी रात की सनसनाती गर्म लड़ाई में बहादुर ईमानसिंह कसूरवाला ही विजयी हुआ । उसने सामने से बढ़ते तीनों डाकुओं को गोलियों से बेधकर सुला दिया । मगर पीछे से झपटनेवालों ने कई गोलियाँ दागकर ईमानसिंह को भूशायी कर दिया ।

इतना सब होते-होते बंदूकों की आवाज़ ने सारे शहर को अँगूठों पर खड़ा कर दिया । बेईमानचंद के खजाने की तरफ सभी झपटे, और पुलिस भी तब तक आ ही तो धमकी ! केवल अपनी जान बचाकर ईमान की मार से बचे डाकू भाग खड़े हुए । खजाना बच गया । ईमान घायल अस्पताल पहुँचाया गया, और वहाँ उसकी एक टाँग, जिसमें पाँच गोलियाँ लगी थीं, काट डाली गई । बेचारे को चंगा होने में पूरे छ महीने लगे ।

अस्पताल से छूटते ही काठ की टाँग और विलायती 'बैसाखी' (लँगड़े का टेका) पर लँगड़ाता ईमानसिंह बड़ी उम्मीदों पर सवार अपने मालिक बेईमानचंद बाबूलाला की तरफ झपटा । सेठ के महल के आनंदबाग ही में फौलादी खजाना है । ईमानसिंह ने देखा, अब एक नाटा-सा गोरखा तिरछी टोपी लगाए, खजाने पर पहरा दे रहा है !

जैसे अपना माशूक गौर के साथ देखकर आशिक का दिल सर्द हो जाता है, ठीक वैसे ही नए पहरेदार को देखकर बकादार ईमानसिंह की हालत हुई। लगातार बारह बरस तक उसने फौजादी कोठरी की, जान की तरह, हिफाजत की है ! खैर....

ईमानसिंह फिर भी हिम्मत बाँधकर बेईमानचंद के सामने हाथ जोड़े आ खड़ा हुआ—

“अन्नदाता !” बच्चों से भी भोला बह बोला—“अभी मैं बंदूक मजे में उठाकर हुआर के दुश्मनों की धजियाँ आसानी से उड़ा सकता हूँ। मैं चंगा हो गया।”

“मगर, तुम्हारी तनख्वाह बहुत ज्यादा है जमादार !” बोला बनकर बेईमान—“खजाने की रखवाली पर मैंने हमेशा के वास्ते उस गोरखे को रख लिया है। उसकी तनख्वाह भी तुमसे पाँच रुपए कम है।”

बेईमानचंद की बातें सुन ईमानसिंह की हवा ही गुम हो गई। सहसा अपनी श्रवण-शक्ति पर एतबार नहीं हुआ उसे। एक बार पुनः महादीन मुख बनाकर उसने चापलूसी की—“मालिक ! मैंने आपका नमक खाया है, मैं आपका शला....”

“मुनीमजी !” जरा कर्कश स्वर से बेईमानचंद बाबूलाला बोला—“मुझे फुर्सत कम है। जमादार का हिसाब साफ़ कर दो। और, देखो, जिस महीने में इसको गोली लगी थी,

उसमें इसने पंद्रह दिन ही काम किया था। इसको केवल दस रुपए अभी दो !”

और, बेईमानचंद के शहर से लँगड़े ईमानसिंह कसूरवाले के गाँव के तीसरे दर्जे के रेल-भाड़े में लगते हैं उन्नीस रुपए !

और जिस खजाने की रखवाली, धर्म की तरह, वह करता था, उसमें हैं बीस अरब रुपए !

वाह होली ! आह होली !!

(१)

तुम्हारी 'वाह होली' है ! हमारी 'आह होली' है !

निष्ठुर कारीगर ! 'जिसे रोनेवाला 'दल' देता है, उसके दो ही आँखें क्यों बनाता है ? आँखों में भी फूट पैदा कराना चाहता है क्या ? तू ही बता, आज होली है । हम हँसें या रोएँ ? 'बसंत' गाएँ या 'विहाग' ? महाकवि 'सौदा' की 'वाह....' पढ़ें या महाकवि 'मीर' की 'आ...ह !' ? 'लंबी दाढ़ी' और 'मर्दानी औरत' देखें या 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' ? पारसी स्टेज की 'खूबसूरत बला' और 'भुलभुलैया' देखें या बँगला-स्टेज का 'मेवाड़पतन' और 'प्रताप' ? 'क्लाइव' की जीवनी पढ़ें या 'सिराजुद्दौला' की ? 'ढायर' का 'मारना' सोचकर मुस्किराएँ या निहत्थों का 'मरना' सोचकर धीरे से रोएँ ? महलों की छाती से हँसकर लिपट जायें या भोपड़ियों के करुण स्वर में स्वर भरें ? क्या कहा ? दोनों ? अच्छा, वही सही ।

(२)

अभी 'होली' के आगमन में तीन दिन की कसर है । मगर लक्ष्मी के प्राणप्यारे रायबहादुर सर्वदानंद का दुलारा महल धन के क्रूर अट्टहास की तैयारी कर रहा है !

अनेक नौकर-चाकर उसकी सेवा में तन्मय हो रहे हैं।

उसके सरल-स्वच्छ शरीर की गर्द साफ़ की जा रही है। उसके अंग-प्रत्यंग पर भिन्न-भिन्न रंगों का चंदन चढ़ाया जा रहा है। ज़रा उस विभूति-विभूषित बैठक की ओर तो दृष्टि दीजिए। उसमें कौन-कौन महानुभाव ?

बिलायती गद्दीदार आराम-कुर्मी पर अँगड़ाई लेते-लेते रायबहादुर ने अपने पार्श्ववर्ती एक मित्र से कहा “मिस्टर बोस, देखिए, होली के दिन कहीं दूसरी जगह न चले जाइएगा। हमने महीनों पहले से आपसे कह दिया है।”

मिस्टर बोस —“सो तो ठीक है जनाब, मगर देखिए, उस दिन मेरे यहाँ भी... .”

बीच ही से बात काटकर सर्वदानंद ने कहा—“हमारे यहाँ और आपके यहाँ में लंका और अयोध्या का अंतर नहीं है। हम-आप बँटे नहीं हैं। आपको अवश्य आना पड़ेगा।”

ज़रा साधारण स्वर से मिस्टर बोस ने कहा—“अ... च्छा।”

“अच्छा नहीं, कहिए—आऊँगा। उस दिन नगर के बड़े-बड़े अधिकारी और रईस भी आवेंगे—आप न रहिएगा, तो उनका स्वागत मैं ठीक तरह कर पाऊँगा ? फिर मशहूर तबायकें भी आएँगी—एकशा नं० वन, ‘लिक्योर’ और शॉपेन’ होंगी। आपके बिना कैसे ठीक होगा ? देखिए, उम

दिन आपके आने में ज़रा भी देर हुई, तो मैं खुद आपके दरवाज़े पर पहुँचकर चिन्ताने लगूँगा—

‘मैं भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं,
दिल में आता है लगा दें आग मैखाने को हम !’”

(३)

आह ! बेचारी भोपड़ी को भी मालूम है कि परसों होली आएगी । मालूम कैसे न हो । वह सर्वदानंद के महल के सामने ही जो रहती है । अनेक वर्षों से महल के अट्टहास के पीछे उस भोपड़ी का रोदन दौड़ता है, और भोपड़ी के गोदन के पीछे उस महल का क्रूर अट्टहास ! अनेक दिवसों का परिचय महल ने भोपड़ी से ‘उज्ज्वल दिवस’ और भोपड़ी ने महल से ‘अंधकार-मय दिवस’ कहकर दिया है । अनेक उज्ज्वल चंद्र-करोज्ज्वला रात्रियों में महल ने भोपड़ी को सुना-सुनाकर गाया है—

“बहार आई है, भर दे बादल-गुलगूँ से पैमाना,
रहे लाखों बरस साकी, तेरा आबाद मैखाना ।



गुज़र यारब ! गुलिस्तों में हुआ है किस शराबी का,
कि आँखें भूमती हैं, नाल-बुलबुल है मस्ताना !
हमारे आँर ‘उनके’ इश्क का शुहरा है शहरों में,
कोई सुनता नहीं अब लैलियो मजनूँ का । अफ़साना !
उसी रश्के-परी पर जान देता हूँ मैं दीवाना,
अदा है जिसकी बाँकी, तिरछी चितवन, चाल मस्ताना !

रही है रात कम अब चलके लेटो, बन चुकीं जलकें,
हटा दो आइना ज्ञानू से, रख दो हाथ से शाना !

(मूनिस)



और इन्हीं सुधाकर-संचित निशाओं में तड़प-तड़पकर
बेचारी भोपड़ी ने महल में कहा है—

“फलक के और ज़माना के गम उठाए हुए ;
हमें बहुत न सताओ कि है सताए हुए !
हम उनके सामने हालत ये है बनाए हुए ;
कि दिल पै हाथ है, आँसू है डबडबाए हुए !”

होली में धन का हुरदंग मचाने के लिये व्यग्र ‘रुपए’ के
बच्चो ! एक मिनट के लिये अपनी हँसी की धारा मंद कर
ज़रा उस भोपड़ी के विनाश का इतिहास तो सुन लो !
उसका विनाश उसी पगली ने किया है, जिससे तुम होशियार
रहते हो । उसी देवी ने किया है, जिसे तुम्हारे बड़े-बूढ़े
राक्षसी कहते हैं । और, जिसका नाम ‘गुलाम जाति की
देशभक्ति’ है !

उस भोपड़ी का राजा, मंगलप्रसाद वर्मा, जिस दिन ‘मा-
बाप सरकार’ की दया से, १२४ (अ) धारा का शिकार होकर,
नैनी-जेल के नरक में भेजा गया, उस दिन उसकी रानी
दयावती के पास खर्च के लिये पचीस रुपए और सँभालने
के लिये दो बच्चे (पाँच वर्ष की एक लड़की और सात

वर्ष का एक लड़का) और एक दूध-फूटा घर क्या भोपड़ी थी ! मंगलप्रसाद के जेल जाने के छ महीने बाद तक कांग्रेस-कमेटी दयावती की दरिद्रावस्था के पोषण के लिये दस रुपए मासिक सहायता दिया करती थी, पर इधर चार महीनों से वह बंद है। कांग्रेस-कमेटी के पास फूटी कौड़ी हो, तब तो सहायता दे ?

फाल्गुन के आरंभ से ही दयावती की चिंता चढ़ती हुई बरसाती नदी का रूप धारण करने लगी। फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा को उस अभागिनी के पास कुल पाँच रुपए शेष थे।

देवि होलिके ! हाथ जोड़ता हूँ। अभागिनी दयावती की भोपड़ी की ओर भरसक न जाना, और यदि तुम्हारी मस्तानी चाल न रुक, उधर मुड़ ही जाय, तो कृपा कर उस अबला के बच्चों के लिये, अधिक नहीं, दो मुट्ठी अबीर जरूर लेती जाना। अबीर देखते ही भोले बच्चे तुम्हें ही अपनी मा समझकर क्षण-भर के लिये लिपट जायेंगे। बहुत अच्छी नहीं, कोई दूटी-फूटी जस्ते की पिचकारी भी उन्हें देना, तुम्हारे ऊपर रंग छोड़ लेंगे—गरीबों के लिये एक ही बहुत है। और सुनो, बासी ही सही, मगर दो पूरियाँ भी, सड़ी ही सही, मगर दो मिठाइयाँ भी। अभागो बच्चे हैं न !

(४)

छोटी बहन करुणा को चार दिनों से भयंकर ज्वर बराबर

बना रहता है, उसकी मा दिन-रात उसके सिरहाने बैठकर सहानुभूति और प्रेम की ओपधि उसे पिलाया करती है, वह सूखकर काँटा हो गई है। पर अज्ञान बालक 'प्रमोद' को क्या ! उसे तो होली की धुन है। उसने अपने धनी मित्रों की तैयारियाँ जब से देखी हैं, तब से वह पिचकारी, नए कुरते, रंग और अबीर के लिये व्यग्र है।

बाहर से दौड़ता हुआ आकर प्रमोद ने मचलकर मा से कहा—“मा, कुरता दर्जी दे गया ? पिचकारी कल मँगा दोगी ?”

शायद कल दयावती ने झूठ कहकर लड़के को फुसला दिया था कि दर्जी के यहाँ सिलने को कुरता गया है। कुरते का सिलवाना सहल है ? दाने का तो ठिकाना ही नहीं, फिर पिचकारी और अबीर कैसे... ?

आँसू भरकर दुजार से दया ने कहा—“देखो भैया, करुणा बोमार है। वह अच्छी हो जायगी, तब तुम दोनो राजा-रानी की तरह होली खेलना।”

लड़के ने हठ दिखलाते हुए कहा—“नहीं-नहीं, करुणा कल अच्छी हो जायगी, तुम कुरते मँगाओ। हूँ, पैसे दो, मैं बाजार से पिचकारी ले आता हूँ।”

इतने में ज्वर से काँपती हुई लड़की ने कहा—“मा, भूख !”

भूख ? कल की दो बासी रोटियाँ ही तो शेष हैं। पर ज्वर

में बासी रोटी ? मारे दुःख के दयावती आँचल से मुख ढाँक-कर रोने लगी ।

करुणा ने पुनः कहा—“मा, लाओ। बड़ी जोर...भूख !”

उठो दया ! दो वही रोटी । भाग्य में जो होगा, वह होकर ही रहेगा । लड़की की क्षुधा-चीत्कार, दो रोटियों के रहते, क्यों सुनती हो ? गरीबों के लिये कोई भी चीज अपथ्य नहीं । पथ्य-अपथ्य तो केवल उन भाग्यवान् मरीजों के लिये हैं, जिनके डॉक्टर आठ रुपए से लेकर हजारों तक फीस लेते हैं । जिनके ‘कविराज’ हजारों रुपयों से ‘कायाकल्प’ करते हैं । तुम्हारे लिए तो—“ओषधिर्जाल्वीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ।”

(५)

होली के दिन गली नुक्कड़ पर से, वही अपना एकमात्र खहर का पुराना और मँला कुरता पहने—नए कुरते और होली के उपहारों से उदास—बालक प्रमोद ने देखा, सब लड़के रंग खेल रहे थे ! आह ! अभागो बालक का हृदय पिचकारी के लिये, रंग के लिये और साफ, नए कुरते के लिये तड़पने लगा । वह दौड़कर अपने एक अमीर बालक मित्र के पास गया, और सरल एवं लालच-मुग्ध स्वर से कहने लगा—“जरा अपनी पिचकारी हमको भी दा भाई !”

अमीर बालक पिचकारी देगा ? उसने रुद्र स्वर से कहा—“हट ! अपनी क्यों नहीं लाता ? टूट जायगी, तो ?”

“न दूटेगी भाई—तुम देखो, मेरे भाई हो न ? मैं तुम्हारे साथ खलता हूँ। मुझे भी एक पिचकारी रंग छोड़ लेने दो।”

“नहीं, नहीं दूंगा। जाओ। बड़े चले हैं हमारी पिचकारी—।”

बालक का हृदय ही तो। वह लिपट गया अपने अमीर मित्र में, और छीन ली उसकी पिचकारी। पर हाय ! बेचारा उसे भरकर चला भी न पाया था, अपनी हवम पूरी भी न कर पाया था कि अमीर बालक की पुकार ने उसके बाप को बुला लिया। प्रमोद के हाथ की पिचकारी छिन गई, आर कस-कस के चार चाँटे उसके कुसुम-कोमल कपोल पर पड़े ! अभागों, निर्धन, देश-भक्ति के दीवाने के लाल, बेध्या, अब आँसुओं की पिचकारी चलाने लगा ! भला, यही पिचकारी नेरे लिये—‘दया-निधान’, ‘दाज-बंधु’, ‘अशरण-शरण’ आदि विशेषणों से याद किए जानेवाले मायावी—ईश्वर ने बनाई है !

✽

✽

✽

घर लाटकर प्रमोद ने देखा, उसका वहन घंटे-दो घंटे को मेइमान है। उसे मृत्यु याद कर रही है। और, मृत्यु का—

“‘उसे’ याद करने से यह सुदृढ़ था,
निकल जाय दम हिचकियाँ लेते-लेते !”

(६)

वाह ! होली !! तुम्हारे लिये नशा-सुन्दरी ने अपने मस्तक पर पूर्ण चंद्र की चिदी लगाई है ! वाह, होलो ! तुम्हारे लिये रायबहादुर सर्वदानंद का मनहर महल दूल्हा बना ! वाह, होली ! तुम्हारे मुख पर का गुलाल रायबहादुर की कृपा से उनके अतिथि कलेक्टर और कमिश्नर की जूतियों पर शोभा पा रहा है ! वाह होली ! तुम्हारे स्वागत में हजारों रुए पानी की तरह बह गए ! वाह, होली ! कोकिला-कंठाओं का मधुर अलाप कितना सुंदर है ? वाह, होली ! भंग की तरंग में तुम भुवनमोहिनी, शराब के नशे में सर्वोत्तम-सुन्दरी, अक्रिम की पीनक में आनंदमयी और गाँजे की गर्मी में गंधर्व-कन्या दिखाई देती हो ! सर्वदानंद की बैठक में उषा की तरह शोभा पाती हुई पूँजीपतियों की प्यारी होली ! वाह !!

❀

❀

❀

आ...ह ! होली !! यह क्या ? निशा-सुन्दरी के साथ तू आई, और तेरे साथ दयावती की प्यारी करुणा की मृत्यु आह, होली ! देख तो !! उसकी भोपड़ी में 'हाहाकार' का साम्राज्य हो गया ! आह, होली ! जिसे अभी तक खाने की, त्योहार मनाने की, लड़के फुसलाने की और ओषधि लाने की चिंताएँ थीं, उसे एक भीषण चिंता और ? कफ़न कहाँ से आए ? शमशान पर कौन साथ चले ? त्योहार के दिन कौन ग़म मनाए ?

❀

❀

❀

आह ! मुहजली होली ! एक बार तो रायबहादुर, पूँजी-पति और धन-मदांव की बैठक छोड़कर श्मशान की ओर नज़र उठा ! देख, अपना सुख छोड़कर काँप्रेस से कुछ स्वयं-सेवक कोमला करुणा को आग में झुलसा रहे हैं ! खेलना भूलकर रोता हुआ प्रमोद अपनी बहन की अंत्येष्टि देख रहा है ! और, सिंगार-पटार भूलकर अबला दयावती अपना हृदय भस्म होते देख रही है—जो करुण स्वर से गा रहा है—“तुम्हारी वाह होली है ! हमारी आह होली है !!”



भ्रम

बात पुरानी है, बहुत पुरानी ।

मनुष्य कुछ-कुछ सयाना हो चला था—माता मनुष्यता की छाती पर अपने छोटे-छोटे, सुकुमार अँगों को उचक-उचककर चाव और चपलता से पुटक लेने और उसकी पय-गंगा में विस्मय-विमुग्ध भाव से पुलक-पुलककर गोते लगा लेने के बाद—अभी-अभी—वह मातामही के विशाल वक्षःस्थल पर, ठुमक-ठुमक गति से, उतरा था ।

उसके नेत्र किनारेदार थे, नवनीतोज्ज्वल, कमल-दलायत । जब वह आश्चर्य-अवाक् होकर अनभ्र आकाश पर दृष्टि डालता, तो उन आँखों का अनोखा नीर-समुद्र, नव-नील-नीर-समुद्र-सा लहरीला दिखाई पड़ता ।

मालूम नहीं आश्चर्य से, अवशता, अज्ञान से या किससे उसकी आँखों में आमुओं का ज्वार उमड़ आता ।

आकाश की नीलांचल में जैसे वह अपना कोई 'पुराना परिचय' ढूँढ़ता; पर कुछ निश्चित न कर पाता कि भ्रम से खेल रहा था या सत्य से ।

वह अक्सर लंबी-लंबी साँसें खींचकर दार्शनिकों की तरह

गंभीर भाव बनाता, हवा को सूँघता, जैसे कुत्ता किसी पूर्व-परिचित वस्तु को एकाएक सामने पाकर सूँघे। पर कुछ ठीक-ठीक समझ न पाता। हँसने लगता—मंद, अमंद, किलकिल, कलकल ! शायद अपनी मूर्खता पर।

आकाश को ताककर, हवा को सूँघकर भी जब उसकी ज्ञानेच्छा पूर्ण न होती, तो प्रायः मेदिनी के सर-रज अंचल में वह लोट-पोट हो जाता ! खलाश हुए नशैल की तरह। और छोटी तथा लाल जीभ निकालकर वसुंधरा की विभूति का स्वाद लेने लगता। वह मुस्कराता, मानो—“अब पहचाना !” मगर तुरंत ही पुनः गंभीर होते नजर आता—चौंकर धूलि-धूसरित मुख एक ओर फेरकर देखता—“ओ... अ... अ... अ अ, मा—मम्मा !”

मनुष्य की “मम्मा” अक्सर उसे इस विभूति-विलास के लिये दंड देती।

और मनुष्य हँसता।

मम्मा रोती, कहती—“इस अभाग को विभूति ही में रस मिलता है—हे भगवान् !”



“हे भगवान् !” मनुष्य ने पहलेपहल सुना। अब वह काफ़ी सयाना हो चुका था।

“मा !” उसने पूछा—“हे भगवान का अर्थ ? यह किसका नाम है ?”

“सर्व-शक्तिमान् , सहस्र-पादान्नि शिरोरुबाहु परमात्मा ही का नाम भगवान् है बच्चे ! वही हमारे कर्ता, घर्ता, हर्ता हैं ।”

“झूठ !” उगते हुए मनुष्य ने माता मनुष्यता के अर्थ का विरोध किया—बाज़ारवाले कहते थे—“भगवान् मेरा नाम है ।”

“हा-हा-हा !” करुणामयी जननी बालक की मूर्खता पर मनोहर-मोह से हँस पड़ी । आगे बढ़कर उसने मनुष्य को गोद में भर लिया, चूमने लगी—“बेटा ! बाज़ारवाले ऐसा ही अर्थ का अनर्थ किया करते हैं ।”

“तो मेरा नाम भगवान् नहीं है ?”

“नाम-भर है; वह भी उसकी याद ताज़ी रखने के लिये । मगर सत्यतः वह समुद्र है—तू एक बिंदु । तू आत्मा है, वह परमात्मा ।”

मा की बातों से मनुष्य को संतोष नहीं हुआ । बाज़ारवालों ने उसे मजे में समझा दिया था कि भगवान् वही है ।

“...वे कहते थे—विद्वानों ने शास्त्रों का निरीक्षण करने के बाद मुझे ‘भगवान्’ विघोषित किया था । और, विद्वान् लोग गुणानुसार ही तो नाम रखते होंगे ? तू मुझे जानती है अम्मा ! भगवान् तो मैं ही हूँ ।”

“नहीं बेटे ! तू भगवान् का प्रसाद है, दास है, उसके दया-सागर की एक प्रेम-पुलकित लहर है ।”

“नहीं, मैं भगवान् हूँ, मैं भगवान् हूँ ।” कहकर मनुष्य

आँगन में लोटने लगा। छेला कर रोने लगा कि मा उसे भगवान् मान ही ले।

मा भी पिघल गई। उसने सोचा—टीक ही तो कहता है, घट-घट-ब्यापी राम।

मनुष्य को पुनः गोद में उठाकर मा ने देखा, उसकी आँखों में आँसू भरा था। “अच्छा-अच्छा !” वह सजग होकर उसे शांत करने लगी—“रो मत लाल ! मैं तो हँसी करती थी। बाज़ारवाले सच कहते थे। तू ही भगवान् है। मेरा भगवान् !”

मा की आँखों से मौलसिरी के फूल-से घवल दो अश्रु-बिंदु भगवान के छोटे-छोटे चरणों पर गिरकर तल्लीन हो गए।



शक्तिमान् होने पर बाज़ारवालों ने देखा, वह मनुष्य असाधारण शक्तिमान् था।

मा मनुष्यता के अन्य बच्चे जहाँ भी उस मनुष्य को पाते, दीप-पतंग-सी हालत कर देते। सभी उस पर मुग्ध होकर उसके चारों ओर मँडराने लगते।

“वृहस्पति की तरह तू विद्वान् है।”

“इंद्र की तरह बलवान्। ओहो ! क्या आजानु-प्रलंबित बाहु है।”

“तू चाहे, तो आकाश चक्कर में आ जाय।”

“तू कोप कर काल-करवाल-क्रीड़ा करने लगे, तो यह ज़मीन पीपल के पत्ते-सी हिल उठे !”

“तू ही पुरुषोत्तम है, हमारा नेता है ।”

मनुष्य गवं-गंभीर भाव से दूसरे मनुष्यों की ओर देखता रहा । आँखों-ही-आँखों वह अपने भक्तों से बोल रहा था—
“सच पहचाना तुमने, मैं ‘वही’ हूँ ।”

उसकी नज़र अपनी भुजाओं पर गई, जो भरपूर गठीली और साधारण प्राणियों की छाती-सी चौड़ी थी ।

और, उसकी छाती कितनी चौड़ी थी ? पहाड़ इतनी !



बाज़ारवालों ने बतलाया—

इस द्वीप के आगे सिंह-द्वीप है, उसके आगे प्रवाल-द्वीप, जिसके शासक यक्ष हैं । फिर मणि-द्वीप, जहाँ नागों का राज्य है । मणि-द्वीप के आगे वह महान् स्वर्ण-द्वीप है, जिसे लोग ‘सुवर्ण-द्वीप’ कहते हैं । क्योंकि वहाँ के सभी प्राणी मुलायम सोने के बने हैं । उस द्वीप की प्रत्येक चीज़ खालिस सोने की होती है । नदियों में सोना बहता है, उद्यानों में सोना फूलता है । सोने के वृक्षों पर सोनचिरैयाँ चारों ओर चहकती सुनी जाती हैं । वहाँ के लोग सोना खाते हैं, सोना जोतते-बोते हैं, और सदैव स्वर्ण-सज्जित वातावरण में विचरण करते हैं !

बाज़ारवालों ने उकसाया—

हे भगवान् ! हम साधारण प्राणी सुवर्ण-द्वीप तक नहीं जा

सकते। दस-बीस मनचलों ने कभी उधर जाने की चेष्टा भी की, तो शायद वे सिंह-द्वीप ही तक—सिंहों के जल-पान की तरह—पहुँच सके।

और, तू तो भगवान है। तेरे लिये सुवर्ण-द्वीप तक जाना, वहाँ से देवी स्वर्णमयी को स्वदेश ले आना—घर-घर सोना फैला देना, साधारण-सी बात है।

बाजारवालों ने समझाया—

भगवान ! सिंह, प्रवाल, मणि आदि द्वीपों पर विजय कर जो कोई सुवर्ण-द्वीप जाता है, वहाँवाले उसकी बड़ी ख़ातिर करते हैं। उसके आगमनापलक्ष में, सात दिनों तक, सुवर्ण-द्वीप के सात महानगर सोने की होली खेलते हैं, और सात रातों तक सोने की दीवाली देदीप्यमान होता है। जब विजयी स्वदेश लौटता है, तो वहाँवाले एक कुमारी कन्या उसे उपहार में देते हैं, और 'स्वर्णस्रष्टा' की पदवी। और, स्वर्णकुमारी जिस द्वीप में पधारती हैं, उस द्वीप के अहोभाग्य !

आँखों में आँसू भरकर, भक्ति विभोर-भावेन, बेचारे बाजारवाले मनुष्य के चरणों पर गिर पड़े—

“हे भगवान् ! तू ही हमें सोना दे सकता है। तू ही स्वर्ण-कुमारी को स्वदेश में ला सकता है।”

भगवान् के चेहरे से पता चलता था कि आशावादिता का रंग गुलाबी होता है, हल्का।



सिंह-दीप—पराजित । भगवान् नृसिंह थे ! सिंहों ने दुम दबाकर उनकी गंभीर स्तुति की, और उपहार में उन्हें एक रथ दिया, जो हाथी-दाँत का बना और गज-मुक्ताओं से मंडित था । उस रथ में सात महान् सिंह जुते थे । सिंह-रथ ही पर सुवर्ण-द्वीप में प्रवेश किया जा सकता था ।

भगवान् के नेतृत्व में चलनेवाले मनुष्यों ने सिंह-सम्राट् से संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कराया कि भविष्य में सिंह मनुष्यों के प्रति सदैव अहिंसात्मक रहेंगे । संधि-पत्र की एक प्रति, मनुष्यों के नेता, भगवान् के पीतांबर के एक कोने में बाँध दी गई ।

आगे के यज्ञ थे, पक्ष-धर । भगवान् को विपक्ष बनाना । उन्होंने भी मुनासिब न समझा ।

फिर संधि-पत्र की तैयारी, फिर हस्ताक्षर ! अब ऊपर से मनुष्यों पर आक्रमण न हो सकेगा ।

यज्ञपति ने नेता भगवान् के सिंह-ग्रन्थ के लिये एक सारथी दिया । वह प्रवाल की तरह लाल-लाल था । नाम था 'रक्तासुर' ।

अंत में, साष्टांग प्रणाम करते हुए, यज्ञपति ने भगवान् को बतलाया—यह रक्तासुर ही सुवर्ण-द्वीप तक आपका सिंह-रथ ले जा सकता है । क्योंकि यह अमर है । युद्ध में गर्दन कटते ही पुनः अरि-मर्दन हो उठता है ।

पराजित नागों ने सिंह-रथ-संचालन के लिये भगवान् को सर्प-विनिर्मित एक चाबुक दिया । साथ ही संधि-पत्र में

प्रतिज्ञा की कि जब नेता भगवान् स्वर्णकुमारी के साथ सविजय लौटेंगे, तब नागों द्वारा सिंह-रथ में सहस्र-सहस्र मणियाँ मंडित की जायँगी।

अब नेता भगवान् के पीतांबर के तीनो छोरों में एक-एक गाँठ थी और प्रत्येक गाँठ में एक संधि-पत्र।

भगवान् प्रसन्न-वदन थे। इस आशा से शीघ्र ही पीतांबर के चौथे कोने में भी सोने का संधि-पत्र बंधेगा !



सुवर्ण-द्वीप में कोलाहल। स्थान-स्थान पर सुवर्ण-सुंदरियाँ रसीले राग गा-गाकर अनोखे स्वदेशीय नाच नाच रही थीं।

सातों महानगर दूल्हों से सजे थे। चारों ओर एक ही चर्चा चल रही थी—कोई आनेवाला है। बहुत दिनों बाद ऐसा अवसर आया है, जब स्वर्णकुमारी, किसी योग्य अधिकारी के साथ, अन्य संसारियों को सोने का श्रवण-सुखद संवाद सुनाने जायँगी। इससे हमारे प्यारे सुवर्ण-द्वीप की महिमा बढ़ेगी।

सुवर्ण-द्वीप के प्रथम फाटक पर ही भगवान् नामधारी नेता के मनुष्य अनुगामी रोक दिए गए। सिंह-रथ, रक्तासुर सारथी और भगवान् द्वीप की राजधानी कनक-कोट में जिस समय प्रविष्ट हुए, उसी समय, पूरब में, अरुण-रथ पर अंशु-माली आए। सहस्र-सहस्र पारदर्शी कर-जाल पसारकर। दिवाकर ने सुवर्ण-द्वीप से सूर्य-लोक तक सोने का समूचा

समुंद्र लहरा दिया, जिसके ऊपर सोने का एक महान बितान तना था—आकाश ।

सातों सिंह, हाथी-दाँत का उज्ज्वल रथ, रथ की गज-मणियाँ भगवान नेता और उनका मंघि-पत्र-ग्रथित पीतांबर, सुवर्ण-द्वीप में घुसते ही, सोने के समुंद्र में तिरोहित हो गए ।

सुवर्ण-द्वीपवालों ने केवल रक्तासुर को देखा, जिसके हाथ में नाग-पाश था । उन्होंने उसी को विश्व-विजयी माना ।

भगवान पर उनकी नज़र भी न गई ।

तीन दिन तक बराबर कनक कोट के सुवर्ण नागरिक रक्तासुर को नमस्कार करते रहे । नौबत यहाँ तक आई कि चौथे दिन उसी को स्वर्णकुमारी भी मिलने को हुई । अब भगवान बचराएँ !

“रक्तासुर !”

“जी ।”

“सुवर्ण-द्वीप के प्राणी तो मेरी ओर देखते भी नहीं, क्यों ? विश्व-विजयी हूँ मैं, और पूजा हो रही है तुम्हारी ?”

“इस द्वीप में केवल रक्त रंग पहचाना जाता है ।”

“और भगवान् ?”

“उहँक ? रक्त रंग के बाद विजयी की पूजा होती है। यहाँ-वाले भगवान को बिलकुल नहीं जानते ।”

“वह—सामने—सोने की सेना कैसी ?”

“स्वर्णकुमारी आ रही हैं, वरमाला डालने !”

भगवान् पीतांबर सँभालने लगे ।

स्वर्णकुमारी कनक-कोट के प्राणियों के साथ स्वर्ण-पुष्पों की माला लिए आईं; वह रक्तासुर की ओर बढ़ीं ।

व्यग्र भगवान्, झपटकर, बीच में आ रहे—“यह विजय-माल मेरी है, भगवान् मैं हूँ कुमारी !”

“कौन बोलता है, भगवान् मैं हूँ ?” साश्चर्य रक्तासुर की ओर देखकर कुमारी ने पूछा—“विजयी ! यह वरमाला तुम्हारी है । हम लोग न तो इस बातुल भगवान् को देख रहे हैं, और न स्वर्ण-माल ही उस मायावी के लिये है ।”

कुमारी ने रक्तासुर की ओर हाथ बढ़ाया । रक्तासुर ने मस्तक झुकाया; स्वर्ण-सुन्दरियाँ जय-जयकार करने लगीं । माला रक्तासुर के गले में चमकने लगी, मानो प्रवाल-पर्वत पर बिजली खेलती हो ।

इस समय मनुष्यों के नेता भगवान् ने, कराल करवाल के एक ही प्रहार से, रक्तासुर का मस्तक छिन्न कर दिया ।

स्वर्ण-सुन्दरियाँ चिल्ला उठीं । कुमारी तो बेहोश होते-होते बची । मगर दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा—विजयी रक्तासुर ज्यों-ना-त्यों खड़ा मुस्करा रहा था ।

अब भगवान् और रक्तासुर जमकर लड़ने लगे । अनेक बार महाबाहु मानव-भगवान् के प्रहारों से रक्तासुर के मस्तक कट-कटकर गिरे, पर वह रहा अमर ही ।

आखिर, सुवर्ण-द्वीप में, स्वर्णकुमारी की लालसा में, रक्तासुर के हाथों, नेता भगवान् को वैकुण्ठ-लाभ हुआ !

और, मरते दम तक, माता मनुष्यता का वह ब्रीहड़ बालक अपने को भगवान् ही समझता रहा ।



उसी दिन से आज तक स्वर्णकुमारी रक्तासुर की अंक-शायिनी हैं । रक्तासुर ही 'स्वर्ण-स्रष्टा' माना जाता है । यक्ष-नाग, किन्नर, नर आदि किसी लोक को जब सोने की चाह होती है, तब रक्तासुर के नाम की माला फेरनी पड़ती है, । भक्तों की पुकार सुनते ही उदाग रक्तासुर उनकी ओर स्वर्ण-कुमारी के साथ दौड़ता है । लोग अपने-अपने कलेजे का खून सहर्ष चढ़ाकर प्रसादरूपेण उससे सोना पाते हैं, और आनन्द-विभोर होकर "रक्तासुर की जय-जय !" चिल्लाते हैं ।

और उस भगवान् का कोई नाम भी नहीं लेता, जो माता मनुष्यता के एक बंगड़-बालक के माथे में उदित होकर, चार दिन चमक-दमककर उसी में डूब गया ।



असली कुत्ता

रावर्ट

मेरे पक्के मकान से सटा एक कच्चा मकान भी है, जिसके दालान में मेरी भूरी गाय और उसके दो-तीन बच्चे बँधते हैं। कच्चे मकान ही में ईंधन के उपले-काठ और गऊ का चारा-भूसा भी जमा रहता है।

और, मुहल्ले की लावारिस अथवा पंचायती कुतिया भवरी कई महीने से गर्भवती है। अब लोगों ने उसे खाना देना इस भय से बंद कर दिया है कि कहीं वह उन्हीं के घर में बच्चे न निकाल दे, और गंदगी और क्याँव-भ्याँव बढ़ावे। मैं भी दिल से तो नहीं चाहता था कि भवरी मेरे मकान में अपना सूतिका-गृह बनावे, मगर भारी पेट लेकर, गर्भ की गर्मी से लंबी जीभ निकालकर, हैरान भवरी को अपने कच्चे मकान में देखकर मुझे दया आ जाती थी। आखिर मेरे ही घर में भवरी के बच्चे तशरीफ ले आए।

सबसे पहले मेरे नौकर ने कच्चे मकान में भवरी को बच्चों के साथ ही ज़रा छूने की कोशिश की। कुतिया, जननी भवरी मेरे नौकर पर दौँत निकालकर झपटी।

हमने देखा, भवरी के बच्चों में तीन कुत्ते थे, और एक कुत्ती। उन तीनों में एक चितकबरा कुत्ता मुझे बहुत पसंद आया, और मैंने उसे पालने का इरादा किया। और आँख खुलते ही भवरी के तीनों मदे बच्चे बट गए—हाँ, वह कुत्ता बच रही। शायद अपनी लड़कियों की तरह इंसान कुतियों को भी नापसंद करता है। जो हो।

जो बच्चा मैंने लिया, उसका नाम रक्खा गया 'राबर्ट'। मैंने राबर्ट को राज नहलाना-धुलाना और दूध, मछली तथा मांस खिलाकर तगड़ा करना शुरू किया। और, माल खाने-वाले के गाल फूलते देर नहीं लगती। वक़्त से पहले ही राबर्ट रईसों के कुत्ते-सा लोआ-पोआ बन गया।

मेरे मुहल्ले में चोरों का आना-जाना बारहों मास लगा रहता है, क्योंकि मेरी सुखतारी की आमदनी पर उनकी तेज़ नज़र है। और, ऐसी तेज़ नज़रों ही के लिये तो राबर्ट को दूध, मछली, मांस स तगड़ा किया था! मगर अकसोस! मैंने देखा कि राबर्ट कभी भूँकता ही नहीं। मोटे सेठों की तरह दिन-रात इधर या उधर आँखें मोचे सोया करता है। राबर्ट से अच्छी तो उसका मा है।

तावारिस कुतिया तो जूठी और रूखी रोटी पर ग़त-भर भूँका करती है। यह राबर्ट तो खान-पुटाकर निहायत हरामखोर तैयार हुआ।

मेरी बातें सुन मेरी पत्नीजी और भी निराश हो उठी—

उस आलसी पशु से। उन्होंने, जब मैं कचहरी गया था तब, यों ही, राबर्ट पर दो चार झाड़ू साफ़ कर दिए। राबर्ट मार खाते ही घर के बाहर भाग गया। कहाँ गया, किसी को पता नहीं।

शाम को कचहरी से लौटकर जल-पान के वक्त मैंने देवीजी से राबर्ट का पता पूछा, तो उन्होंने कहा—“न-जाने कहाँ भागा निगोड़ा ! मैंने तो हल्के हाथों ही उसकी पूजा की थी !”

नौकर को मैंने ऑर्डर दिया कि फ़ौरन् राबर्ट को खोजकर लावे। नौकर “राबर्ट ! राबर्ट !!” पुकारता हुआ सारे मुहल्ले में फिरा, पर राबर्ट का पता नहीं। तब मैंने आवाज़ दी—“राबर्ट !” दूर के कूड़ाखाने पर उदास पड़ा राबर्ट एकाएक भूँक उठा। वह झपटकर मेरे पास आया। दुम हिलाकर मेरी इज्जत करते हुए मेरी पत्नी की तरफ़ देखकर गुरीने लगा।

“आदमी की तरह अपमान को जानता है...” देवीजी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए राबर्ट के सामने दूध-भात रख दिया। मगर उसने सूँघा तक नहीं।

“तुम्हारे ही हाथ से खायगा—मुन्ना !” ताने से तिनक-कर देवीजी बोली—“यह कुत्ता नहीं, तुम्हारा बेटा है।”

कुत्ते बड़े समझदार होते हैं। मगर राबर्ट साला महज खाने में समझदार है। “राबर्ट !” दूध-भात हाथ में ले मैंने पुकारा, और राबर्ट तुरंत मेरे पास आ खाना खाने लगा।

एक दिन कचहरी से बहुत थका लौटा था, जल्द ही खाना खाकर पलंग पर पड़ रहा। तुरंत नींद आ गई। मैं नाक बजाने लगा। एक बजे रात तक एकांत सोता रहा। एक बजे के करीब एकाएक मैंने शेर के गर्जन-सी आवाज सुनी— मैं जाग उठा। आश्चर्य ! आज मेरे पलंग के नीचे राबर्ट बड़े जोर से गुर्ग रहा था।

मेरे अधिक विचारने के पहले ही वह बरामदे के बाहर अंधड़ की तरह तेज और घनघोर भपटा ! हाथ में टाच ले मैं उसकी ओर बढ़ा ही था कि किसी आदमी की लाचार पुकार सुनाई पड़ी—“बाप रे बाप ! यह कुत्ता नहीं, बाघ है !” साथ ही राबर्ट की भी करुण चीत्कार तुरंत ही मुहल्ले-भर में फैलकर अनांधकार में विलीन हो गई। मैंने समझा, किसी ने राबर्ट पर घातक हमला किया।

मैदान में आकर देखा, एक तरफ एक चोर अधमरा तड़प रहा था, और दूसरी तरफ धारदार हथियार के प्रहार से लहू-लोहान राबर्ट अंतिम साँसें गिन रहा था।

राबर्ट को खोकर मैंने जाना कि वह कुत्ता होकर भी अनेक अज्ञान आर्दामियों से अधिक अच्छा था। वह बोलनेवाला नहीं, वक्त पर छाती पर हथियार झेलकर अपने मददगार के लिये मुक्तों की तरह मरनेवाला मनस्वी था !

अवतार

अ

“हे प्रभो !” अत्याचार-पीड़ितों ने अपने पीड़ित प्राणों को केवल कंठ में एकत्र कर पुकारा—“तुम कहाँ हो ? ज़रा पृथ्वी के इस कोने की ओर तो अपने करुण कटाक्ष फेरो। ज़रा हम दुखियों और गरीबों पर तो एक बार निगाह करो। ज़रा देखो तो, ये चंद उन्मत्त मतवाले तुम्हारी समता में कैसी विकट विषमता के कुबीज बो रहे हैं। हमारे दुर्बल प्राणों को पापी आततायियों की प्रचंड पीड़ाएँ मारे डालती हैं। तुम ऐसे गाढ़े मौक़े पर कहाँ हो स्वामी ? आओ, आओ ! और, हमें अत्याचार के आतंकी आक्रमणों से बचाओ !”

“हे सहस्रगदाक्षिशिरोरुवाहवे !” भक्त-साधुओं ने गंभीर गुहार दी—“वर्तमान जगत् नास्तिकता की ओर बढ़ा जा रहा है। बढ़ा जा रहा—तुम्हें और तुम्हारी श्रुति-विदित विभूति और विक्रम को बिसारकर। और, वह क्यों न बढ़ जाय ? जब लाख-लाख पुकारने पर भी तुम नहीं पसीजते, नहीं बोलते—अपने जागरित अथवा अजागरित अस्तित्व का कुछ परिचय नहीं देते, तब लाचार होकर मनुष्यता के पीड़ित बच्चे

तुम्हारे प्रति और तुम्हारे अस्तित्व के प्रति, नाम के प्रति, धाम के प्रति विद्रोह करते हैं। आह ! इस देश के पीड़ित, ये भक्त, ये भावुक, ये भोले कब से तुम्हें पुकार रहे हैं परमेश्वर ! तुम क्यों नहीं पधारते ? तुम क्यों नहीं पधारते ?”

“साईं !” अभागिनी अबलाओं ने काँपते कंठ से कराहकर कहा—“हमारी सुधि आप क्यों नहीं लेते ? आह ! क्या हम आपकी सृष्टि, आपकी, संतान नहीं हैं ? हैं, तो हमें आप ही की आधी कृति बली बनकर, ज्ञानी बनकर, मदांध होकर क्यों नाशे डालती है ? क्यों खाए-पचाए जाती है ? ये पशु, ये पीड़क ये पापी, ये पुरुष, हमें गोया आत्मवती मानते ही नहीं। हम सुकुमार क्या हो गईं, इनके भोग की सामग्री हो गईं। हम सुंदर क्या हो गईं, इनकी असुंदर वासनाओं की चेरी हो गईं। हम करुणामयी क्या हो गईं, इनकी कठोरता की, क्रूरता के कुकर्मों की कीड़ा-स्थली बन गई हैं। उक् ! हमारा तन—पवित्रपुष्पों-सा, हमारा मन—गंगाजल-सा, हमारा धन—स्वर्ग-सा दला-मला जा रहा है, अपवित्र किया जा रहा है, लूटा जा रहा है, नरक बनाया जा रहा है। हे विश्वसखे ! तुम कहाँ अलक्ष हो, किधर छिपे हो—क्यों मौन हो ? आओ, प्राण ! बचाओ; प्राण !”

व

“पश्चात्ताप करो ! पश्चात्ताप करो !” उसी देश के किसी विख्यातज्ञानी ने अज्ञानियों और सत्ताधारी नर-पशुओं को

ललकारकर कहा—“हे मनुष्य के रूप में भेड़ियो ! शीघ्र-से-शीघ्र अपने पापों के लिये रो लो, क्योंकि अब ‘वह’ आने ही वाला है ।

‘हे पागलो ! यह समझकर न पेंटे रहो कि तुम्हारी सहायता के लिये सेनाएँ हैं, ज्ञान को अज्ञान और अज्ञान को ज्ञान का वेश सजा देनेवाले धूर्त तर्क-विद्या-विभूषण हैं ; बड़ी-बड़ी विकराल ज्वाला-प्रसविनी तोपें हैं ; शक्ति है, दंड है, ताप है, तेज है; रूप है, रंग है, बुद्धि है, पुरुषार्थ है आह ! न भूलो इन क्षुद्र ऐहिक विभूतियों पर। इन्हें तो ‘वह’ इन ज़रों से पैदा कर सकता है। हाँ-हाँ, विश्वास मानो। वह, जो तुम्हारे कर्मों का लेखा जाँचने के लिये आ रहा है, ऐसा ही प्रचंड पराक्रमी है ।

“हे मानवता के नीरस तरुओ ! सावधान हो जाओ—उसके आने के पूर्व ही—और हरे हो जाओ, कालिमा की काई धोकर। फूल पड़ो; फल दो। नहीं तो—मत भूलो। उसकी वह लौह-कुल्हाड़ी तुम्हारी जड़ों ही पर जमी है। तुममें से जो कोई भी हरा न होगा, सरस न होगा, सफल न होगा, स-जीवन न होगा, वह टँगिआया जायगा, काटा जायगा, निर्मूला जायगा, और नरक के भाड़ में डालकर युग-युगांतरों तक जलाया जायगा ।

“अस्तु, हे दुनियावी सुफैदी के परदे में रँगनेवाले काले साँपो ! शीतल जल की तरह मेरे इस मंत्र को अभी से मान

लो, तथा केंचुल के भीतर भी उज्ज्वल बनो ! और नहीं, तो 'वह' आता ही है। वह ठंडा नहीं, आग है; मंत्र नहीं, अभिशाप है; शांति नहीं क्रांति है—युद्ध है वह तुम्हें धुआँ से, चिनगारियों से, गर्म गंधक से, लावा से और आग की लपटों से शुद्ध करेगा।

“पश्चात्ताप करो ! पश्चात्ताप करो ! हे शक्ति के मतवालो, पश्चात्ताप करो ! क्योंकि वह आने ही वाला है।”

ता

जिस देश के अवतार की यह कथा है, उस देश पर उन दिनों विदेशी विजेताओं का शासन था। वह विदेशी नर नहीं, नराधम थे—नर-पशु थे। उस देश के परतंत्र प्राणियों की कमजोरियों का अनुचित लाभ उठाकर वे उन्हें भँति-भँति की यातनाओं से पीड़ित करते थे। उनके छोटे-बड़े गाहियों और कोड़ियों 'करो' का विस्तार ऐसा विकट था कि प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। विदेशी शासक और उनकी मशीन के स्वदेशी-विदेशी पुरजों उस देश के गरीबों को बात-बात में ऐसा पीसते थे कि देखने-सुननेवाले दाँतों उँगली दबाकर रह जाते थे।

इसी से तो वहाँवाले रह-रहकर गरीब हृदय से, पवित्र मन से उस 'आनेवाले' को पुकार रहे थे। और, इसी से तो उनकी पुकार सुनकर 'वह' आया था। हाँ-हाँ, वह आया था। इतिहास तो यही गवाही दे रहे हैं।

वह आया था ; बड़े-बड़े महलों में नहीं, और न भयानक दुर्गों में, क्योंकि उस समय के दुर्ग और महल अत्याचारों के अड्डे थे। भला, ऐसे अपवित्र स्थान में वह कैसे आता ?

वह आया था, सुवर्ण-सज्जित, मारवल-मंडित देव-मंदिरों, पूजा-स्थानों और मठों में नहीं, क्योंकि उस समय के वे पूजा-स्थान भी वेश्यालयों से कम न थे। देवता देवता नहीं, पत्थर थे। उपासक उपासक नहीं, कामी कीड़े थे—भला, उनके बीच में वह कैसे आता ?

वह आया था एक दुखिया की भोपड़ी में, एक भूखी, सताई और गरीब जाननी के गर्भ-मंदिर में—एक दुनिया के थपेड़ों से पागल पिता के आँगन में।

वह बालपन से ही तेजस्वी, घीमान्, दयालु, वीर, सुंदर और नत्तवान-सा मालूम पड़ता था। किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते तो उसके घर के पड़ोसी आँखें फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगे कि वह अवश्य कोई असाधारण प्राणी है। उसे सभी प्यार करते थे। उसे सभी 'अपना' मानना चाहते थे। उसकी एक मुसकान, एक दया-दृष्टि के सभी आकांक्षी थे।

वह उस समय के विद्यालयों में, ज्ञान के लोभ में, अधिक काल तक माथा-पच्ची नहीं करता रहा। कुछ घंटे क-ख और चंद दिनों तक कर्ता-कर्म की कथा सुनते ही मानो भगवती

शारदा की ज्ञान-वीणा के सारे तार उसके अंतःसंसार में मँकार कर उठे। देखते-देखते वह ऐसा ज्ञानागार हो गया कि बड़े-बड़े ज्ञानी उसकी ज्ञान-वार्ता सुनकर दंग हो गए—ठगे-से रह गए।

वह जवान क्या हुआ, मानो परतंत्रों का वह विस्तृत राष्ट्र उसके साथ-साथ यौवनमय हो उठा। स्वदेश की दुर्दशा और मनुष्यों की नीचता देखते ही वह न्याय, सहानुभूति, त्याग और बलिदान के लिये पुकार पड़ा—

“हे दलित देश के बंधुओ ! जागो, उठो, विद्रोह करो ! और, आततायियों को यह बता दो कि मनुष्य पर मनुष्य को जबरदस्ती शासन या अत्याचार करने का कोई भी अधिकार नहीं।

“हे सत्य-चिरंतन के जन्मजात वीर बालको ! अरे, तुम अपनी आत्मा की ओर देखो—शरीर की ओर नहीं। शरीर तो नाशवान् है, मगर तुम्हारी आत्मा अमर है। तुम्हें कोई नहीं मार सकता। फिर उठो। और उठो जागो, और जागो। तथा विद्रोह करो इन भूले पागलों के विरुद्ध, जो आत्मा की गद्दी पर अपने शरीरों को सँवारे बैठे हैं। ये मिथ्या मार्ग पर हैं, भूले हैं—इनके असन और भूल का सर्वनाश होगा ही; बशर्ते कि तुम सत्य पर सावधानी से डटे रहो।

“अतः आओ। अपनी आँखों में ज्ञान का अंजन आँजकर, सत्य का वर्म-चर्म पहनकर, त्याग का मुकुट धारण कर और

बलिदान का शस्त्र हाथ में लेकर विद्रोह करो इन मनुष्यता के भूले पागलों के विरुद्ध। परमात्मा और आत्मा का संदेश घर-घर पहुँचाओ, परतंत्रता की बेड़ी काटो—स्वाधीन बनो। हे अमर मनुष्यता के स्वर्ग-दुर्लभ सैनिको !”

आह ! उसकी वह पुकार क्या थी, उस पीड़ित देश के एक-एक प्राणी के पवित्र मन की प्रतिध्वनि थी। देखते-देखते उस देश के लक्षादिक बालक, युवा, नर, नारी उसके विद्रोही भंडे के नीचे आ खड़े हुए।

सत्ताधारी अत्याचारियों का अविचारी शासन-यंत्र काँपने लगा।

र

मगर आह ! आदमी भी कैसा अनोखा अजायबघर है। इस एक ही ज्ञानी पशु के भीतर अनेक विरोधी भावों की दूकानें एक साथ ही लगी रहती हैं। यह क्या कहता है, क्या समझता है, और क्या चाहता है—इसका पता लगाना, आदमी तो आदमी, परमात्मा के लिये भी संभव नहीं। यह विपत्ति पड़ने पर, अवतार-अवतार बराबर पुकारता है; पर जब अवतार इसके बीच में ईश्वर के वरदान की तरह आता है, तब यह उसे पहचानता ही नहीं।

ज्यों-ज्यों उस गरीब की भोपड़ी के चिराग का महत्त्व और दल बढ़ने लगा, त्यों-त्यों उसके विरोधी भी बढ़ने लगे। उसके विरुद्ध उस देश के विदेशी शासक तो हुए ही, साथ ही अनेक

स्वदेशी ज्ञानी भी हुए । किसी ने कहा—“वाह ! यह अवतार है ? ज़रा इसका मुँह तो देखो . न पढ़ा, न लिखा, न राजा, न सेनापति, न व्यवस्थापक, न विचारक । भला, यह महापुरुष कैसे हो सकता है । अरे, सावधान ! यह विदेशियों का गुप्तचर है । प्रजा को उभाड़कर उसे राजा की क्रोधाग्नि में भुनवाना चाहता है । होशियार ! हे विद्रोह की ओर बढ़नेवालों ! यह अवतार नहीं—भंड है, भंड ।”

यही अमीरों ने कहा, यही विद्वानों ने कहा, यही महंतों ने कहा, और यही सब उनके मालिकों—विदेशियों ने कहा ।

मगर गरीबों ने, भोलों ने श्रद्धालुओं ने तो उसे पहचाना था । वे बराबर उसकी बातें मानते रहे, उसके उपदेश सुनते रहे, उसका दल बढ़ाते रहे, और विद्रोह का संदेश चारों ओर फैलाते रहे ।

आखिर सत्ताधारी पागल बिगड़े । उन्होंने उसके विरुद्ध यह-या-वह अपराध लगाकर उसी देश के और उसी रंग के जासूसों और गुलाम सैनिकों की सहायता से एक दिन उसे बाँध लिया । बाँध लिया राजा के विरुद्ध विद्रोह-प्रचार करने के अपराध में । उसकी गिरफ्तारी के पूर्व उसके सहस्राधिक भक्त बिगड़े सत्ताधारियों की सेना के विरुद्ध । फिर क्या था, पागलों को माँगी मुराद मिली । भूखे सैनिक, कुत्ते भीड़ पर ललकार दिए गए, और सैकड़ों गरीब, निरीह, सच्चे पाणी तलवारों के घाट उतार दिए गए ।

“आयें !” मुखौं ने मन-ही-मन कहा—“हमारे बच्चे सत्ता-धारियों द्वारा पीस डाले गए । हमारे भाइयों की गदनें काट डाली गईं । हमारी माताएँ और बहनें बेइज्जत की गईं—‘वह’ स्वयं बाँध लिया गया, और इतने पर भी न आग लगी, और न धुआँ फैला । यह कैसा अवतार है भाई !—कौन कहता है, वह अवतार है ! वह तो सचमुच भंड ही निकला—आँच पर चढ़ने पर खरा सोना न निकलकर धोका साबित हुआ । मारो इसे । नाश हो इस ढोंगी महापुरुष का ! यह तो ठीक जासूस मालूम पड़ता है ।”

न्याय का नाटक खेलने के बाद सत्ताधारियों ने ललकारा—“फाँसी का तख्ता सजाओ, हैमलाक लाओ, क्रूस मँगाओ, जल्लाद को बुलाओ । आज उस ढोंगी की जीवनी का अंतिम पृष्ठ लिखा जायगा, जो महामहिम सम्राट् के विरुद्ध बगावत कर रहा था ! जो अपने को अवतार कहकर प्रजा को राजा—पवित्र, देवता—के विरुद्ध उभाड़ रहा था । आज देखा जायगा कि यह कैसा अवतारी प्राणी है ।”

वह अधिक द्वारा फाँसी के तख्ते पर खड़ा किया गया । उसके चारों ओर मुख जनता की भीड़ भी सरकारी गोयंदों द्वारा जुटाई गई थी । इसलिये कि राजा के विरुद्ध बगावत करने का दंड देखकर लोग ठंडे पड़ जायें । फिर कभी किसी को अवतार मानकर शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की हिम्मत न करें ।

उसे, असहायों की तरह, फाँसी के तख्ते पर निहार— मनुष्य को जादूगर के रूप में देखकर संतोष चाहनेवाली— जनता क्रोध से पागल हो उठी, क्योंकि उसी के मंत्र के कारण तो उनके घरों में सत्ताधारियों द्वारा आग लगाई गई थी। उसी के पाप से तो उन मूर्खों के परिवारी मारे काटे और जलाए गए थे। ओह ! वह पक्का नीच था। कौन कह सकता है कि वह अवतार था।

क्रोध से पागल जन-मंडली ने उस गरीब के लाल के मुँह पर थूका—“ले, तू इसी का पात्र है ! पापी कहीं का—तू अवतार बनने चला था !!” क्रोध से उन्मत्त मूर्खों ने उसे पत्थर से मारा, चाबुक से मारा, गालियाँ दीं, और क्या-क्या नहीं कहा। मगर वह अंत तक शांत और मुस्किराता रहा। उसने कहा—“भाई, मैं अवतार नहीं, तुम्हारा भाई हूँ। तुम्हीं जिसे चाहो, अवतार बना दो, और जिसे चाहो, नाश के नरक में धकेल दो। मगर भाई, मैं सच्चा हूँ। तुम्हारा सेवक हूँ। मैं आज भी कहता हूँ—न डरो किसी मनुष्य से; क्योंकि वह केवल तुम्हारे शरीर का शासन कर सकता है, आत्मा का नहीं। मत मानो शासन किसी देही का, क्योंकि उसका शासन स्वर्ग का संवाद नहीं, नरक का निमंत्रण है। मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ, क्योंकि तुम भोले हो। तुम नहीं समझ रहे हो कि तुम क्या कर रहे हो। परमात्मा तुम्हें सुबुद्धि दें—तुम्हारा मंगल करें !”



वह हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गया ।

उक् ! इतिहासों से पूछो—और पूछो धर्म-ग्रंथों से ! वे तुम्हें बताएँगे कि सूली पर चढ़ जाने के बाद लोगों ने उस गरीब की भोपड़ी के चिराग को अपना नेता माना, उपदेशक माना, चाता माना, अवतार माना—ईश्वर माना ।

विद्रोह हुआ—उसके प्रस्थान के चंद हफ्तों बाद ही उस परतंत्र देश में, ओर हुआ उन्हीं मूर्खों द्वारा, जिन्होंने उस महान् के मुँह पर थूका था । सत्ताधारियों के रक्त से पृथ्वी लथ-पथ हो उठी, और पृथ्वी के दर्पण में भाँककर आकाश के कपोल भी रक्त हो उठे ! धुआँ उठा, चिनगारियाँ चमकीं, आग लगी, ज्वालामुखी फूटे—मगर कब ? जब वह सूली पर टाँगकर 'अवतार' बना दिया गया !

आह री दुनिया ! हाय रे उसके समझदार बच्चे !!

सुधारक

डॉक्टर साहब ने उत्तेजित भाव से चश्मा पोंछकर, रतिलाल बाबू से सलाह ली—“रामकिशोर मर गया, मगर मेरे इलाज के पैसे अभी न मिले। अपने पैसे तो आप मुर्दों के मुँह में से भी पा जाते हैं, कोई हिकमत मुझे भी सुझाइए।”

रति—“रामकिशोर के घर में उसकी विधवा युवती है, और बाहर हजारों का कर्ज। वहाँ से आप कुछ भी नहीं पा सकते।”

डॉक्टर—“आप कहते हैं, कुछ भी नहीं—मैं जोड़ता हूँ, बहुत कुछ।”

रति—“कैसे ?”

डॉक्टर—“रामकिशोर की वह विधवा है न युवती ? रुपए नहीं, तो उससे रुपया पाया जा सकता है।”

रति—“गरीब था तो क्या, रामकिशोर अपना मित्र था। मित्र की विधवा पर बद नज़र डालना ठीक नहीं।”

डॉक्टर—“मर जानेवाले की कमाई और लुगाई उनकी होती है, जो जीवित बचें ! विधवा तो किसी-न-किसी से फँसेगी ही—फिर मैं ही अपना दाम क्यों न वसूल कर लूँ ?”

रति—“सुना है वह बड़ी सच्चरित्र है।”

डॉक्टर—“प्रचंड पौरुष के सामने मैं तो औरत के चरित्र को अग्नि के सामने मोम ही मानता हूँ ।”

रति—“अरे भाई ! तुम डॉक्टर ठहरे । नारियों को समझना तुम्हारा ही काम है । लेकिन यार ! पिघले, तो ज़रा हमें भी रस लेने देना ।”

डॉक्टर—“शेर के शिकार में अक्सर छोटे जानवरों के हिस्से का रस भी अनायास ही रहता है ।”

डॉक्टर पूर्ण मर्दाती अकड़ से विधवा को पटाने के लिये उसी वक्रत स्वर्गीय रामकिशोर के घर की तरफ़ भपटे ।

“कौन है ?”

“दरवाज़ा खोलो । मैं हूँ डॉक्टर ।”

अनाथ अबला के सूने घर का द्वार कंपित हाथों से खुला । रामकिशोर की विधवा घूँघट काढ़े, सिर भुकाए, नज़र आई । डॉक्टर ने सिर से पाँव तक घूरकर विधवा की जवानी की जाँच की, और जैसे तगड़ी गाय से क़साई खुश हो, वैसे ही मन-ही-मन नाच उठा ।

“दो सौ रुपए तुम्हारे मृत पति पर मेरे होते हैं ।”

“मगर मेरे पास तो दो सौ कोड़ियाँ भी नहीं ।”

“मुँह खोलकर बातें करो ।” डॉक्टर ने मंत्र मारा—मैं तुम्हारा सहायक हूँ—कोई परदेसी नहीं ।”

मगर हिंदू विधवा का मुँह नहीं खुला ।

“पैसा-कौड़ी नहीं है, तो तुम्हारा गुज़र कैसे होगा ?”

“ईश्वर हैं—सबकी लाज रखनेवाले।” बाँसुरी-सी बेचारी विधवा बज उठी।

“तुम यदि बुरा न मानों, तो” झूठी माया पसारता हुआ डॉक्टर बोला—“ज़िदगी-भर मैं रामकिशोर की तरह तुम्हें सँभाल सकता हूँ। तुम बड़ी ही सुंदरी हो !”

“जाने दीजिए—ऐसी बातें।” लज्जिता अबला बोली—
ऐसी बातों से मैं अपना अपमान समझती हूँ।”

“मान रखना है तो मेरे रूप देने होंगे या कुछ और, नहीं तो बात कचहरी तक जायगी, और तुम जेल तक।”

जेल, कचहरी और अपमान की चर्चा से वह अनाश्रिता अबला रोने लगी।

“तब मेरी बात मान जाओ ! तुम निहायत सुंदरी हो—मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा, लिखाऊँगा, नाचना-गाना सिखाकर अप-टू-डेट बिदुषी बनाऊँगा सुंदरी !”

बेहया, बचक डॉक्टर ने बेचारी विधवा के घूँघट पर झपटकर हाथ लगा दिया, और उसी वक़्त वह पतिव्रता आग-आग हो उठी ! एक घूँसा उसने डॉक्टर की छाती पर ऐसा जमाया कि वह चारो खानो चित्त ड्योड़ी के बाहर जा गिरा।

विधवा ने भीतर से दरवाज़ा बंद कर लिया। अपने को तुरंत सँभाल डॉक्टर कचहरी की ओर बढ़ा।

उसी दिन शाम को युवती विधवा की ख़बर लेने बाबू रतिलाल भी आए।

“कौन रो रही है घर में ? दरवाजा खोलो ।”

अभी तक डॉक्टर द्वारा अपमानिता अनाथा रो रही थी। उसने भिन्न स्वर पहचान कर दरवाजा खोल दिया। रतिलाल ने देखा, उसकी आँखें लाल थीं।

“क्यों रोती हो ?” बाबू साहब भी आरत को फँसाने चले—“गमकिशोर नहीं रहे, तो क्या हुआ, मैं तो हूँ। क्या चाहिए तुम्हें, जो रो रही हो ?”

“तेज जहर ।”

“मरोगी क्यों ? तुम मेरे घर पर आगम से रह सकती हो—जहर खाए तुम्हारा मुद्ई ।”

“मेरा मुद्ई है वह डॉक्टर, उसी के मारने के लिये मुझे ऐसा जहर चाहिए कि पापी को लहर भी न उठे ।”

“क्या डॉक्टर को मारकर मेरी सेवा स्वीकार करोगी ? मेरा दिल तुम्हें बेअख्तियार चाहता है ।”

“मुझे तेज जहर चाहिए ।”

“डॉक्टर को मारकर मुझे जिलाओगी मेरी जानी ?”

“मुझे तेज जहर चाहिए ।”

न-जाने कहाँ से लाकर एक छोटी-सी पुड़िया लोभी रतिलाल ने युवती विधवा को दी, और फिर जाकर डॉक्टर से मिला।

“मैं साली को जेल भेजकर दम लूँगा ।” बिगड़ा छूटते ही पाजी डॉक्टर।

“मगर डाक्टर साहब !” रतिलाल ने बताया—“वह तो आपको चाहती है। औरत की आदत आप नहीं जानते।”

“क्या बकते हो, वह सती है—पगली हिंदू औरत, जो जिदगी के मजे छोड़ मुर्दे के नाम पर तप करेगी !”

“अजी, उसने आपको बुलाया है। उसका आदमी हज़रत को ढूँढ़ता मेरे घर पर आया था।”

“झूठ—दिल्लगी करते हो ?”

“क्या तुम भी बुद्धू हो ! औरत के बारे में मैं भला तुम्हें धोका दे सकता हूँ। बस, जल्द जाओ—और ज़रा मेरा भी ध्यान रखना।”

“ज़रूर, मगर वह एक बार फँसे भी तो। मैं जाऊँ ? सच कहते हो ? उसने बुलाया है ?”

“हाँ यार ! वह मरती है तुम पर.....!”

फ़ौरन ही डॉक्टर ज़रा शरबत पीकर विधवा युवती के घर दौड़ा, और वाह ! प्रसन्नता से उसने देखा, दरवाज़ा खुला है।

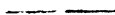
“वासकसज्जा मेरी प्रतीक्षा में है।” नज़दीक आ डॉक्टर सरपट दौड़कर विधवा के दरवाज़े पर पहुँचा।

डॉक्टर ने देखा, काठ के दीपाधार पर मिट्टी का दीपक जल रहा है। सोलहो शृंगार किए युवती विधवा एक दरी पर, दीवार स सटी, आँखें बंद किए, बैठी है, और उसके सामने कई गहने बिखरे पड़े हैं।

“माफ़ करना सुंदरी ! झपटकर, विधवा की ठुड़ी छूकर डॉक्टर बोलते-बोलते चौंका ! विधवा ठंडी थी उसकी नाड़ी बंद थी ।

“आत्महत्यां !” काँपकर डॉक्टर गज्रों पीछे हट गया । क्षण-भर किंकर्तव्य-विमूढ़ रहने के बाद वह भागा उस सूने घर के बाहर ।

मगर गली में आकर डॉक्टर रुका । कुछ सोचकर पुनः विधवा के शव के पास आया, और सारे गहने चोरों की तरह चुनकर चलता बना !



रामदाने के लड्डू

लड़कपन में सुना करता था—“रामदाने के लड्डू पैसे के चार ।”

कल सुनाई पड़ा—“रामदाने के लड्डू पैसे के दस !”

मैंने सोचा, है क्या माजरा ? रामदाने के लड्डू इतने सस्ते !

जी में आया, पैसे के दसवाले लड्डूओं का भी जायका लिया जाय । मैंने लड्डूवाले को आवाज दी । वह रुका— नज़दीक आया । मैंने अनायास ही उसकी दीन डलिया में पैसे के दसवाले रामदाने के लड्डू देखे ।

और, याद आ गई बचपन के पैसे के चारवाले लड्डूओं की । इनसे वे साइज में चौगुने तो होते थे बड़े, साथ ही स्वच्छ और आकर्षक दिखाई पड़ते थे दसगुने । पैसे के चारवाले बड़े-बड़े, फूले-फूले नज़र आते थे ।

पैसे के दसवाले दूर से ऊँट की मेंगनी-से दिखाई पड़ते हैं ! मैं जिस बाल-सुलभ, आतुर श्रद्धा से रामदाने के लड्डू खाने को लपका था, वह पैसे के दसवालों की दीन दशा देखते ही सूख गई, और समाप्त हो गई ।

“क्यों भगत ?” मैं सवाल करता हूँ लड्डू बेचनेवाले से,

जो देखने में दरिद्रता की तस्वीर है—तन पर फटा कुरता, फटी धोती, पनही नदारद—मुख-श्री मूर्छित—“ये लड्डू तो पैसे के चार की तरह ताजे नहीं।”

“महाराज ! वे लड्डू हम घर पर, ज़रूरत-भर खुद ही तैयार कर लेते थे रोज़-बरोज। मगर अब बड़ी पूँजीवाले पेशेवर थोक-के-थोक माल तैयार कर हमारे हाथ कमीशन पर गिन-गिनकर बेचते हैं। अब हम महज फेरीवाले रह गए हैं। बाज़ार में चढ़ा-ऊपरी ऐसी है महाराज कि क्या करें।

“दूसरी बात यह कि बंबई के नाम से बिकनेवाली रंग-बिरंगी विदेशी मिठाइयों की रेलपेल भी है। जापान, इंग-लिस्तान या अमेरिका से आकर भी हमारी गलियों में वे पैसे में पचीस बिकती हैं—पैकेट में बँधी, साफ-सुथरी।

“ऐसी हालत में पैसे के दस लगा देने पर भी रामदाने के लड्डू बेचनेवाले को ‘हाय राम !’ ही हाय लगता है। आज के बच्चे रंगीन विलायती मिठाइयों के सामने रामदाने के लड्डू की ओर फूटी आँखों भी नहीं देखते।”

“रामदाने के लड्डू तो विलायती चूसनेवाली स्वाद-शून्य सस्ती मिठाइयों से कहीं अच्छे लाभकारी होते हैं ?” मैंने ग़रीब फेरी वाले से उनके न बिकने का कारण जानना चाहा।

“लाभकारी होने पर भी रामदाने लड्डू पैकेट-बंद रंगीन विदेशी मिठाइयों के-से मोहक नहीं। और, नादान बच्चे तो गुण न देख, रंग ही पर लट्टू होते हैं।” ठंडी साँस लेकर

निराशा से डलिया उठाते हुए विदेशी कंपिटीशन से मृतक
फेरीवाला अपनी राह लगा ।

और मैं चिंतित चुप रहा !



चौड़ा छुरा

शहर बनारस की एक बाहरी सड़क पर बुढ़िया रहती है।
उसका नाम है जमालो।

चीनी तलवार-सा चौड़ा, लंबा छुरा है उसके पास एक,
जिससे वह साग-भाजी काटा करती है। अपने मृत पति का
चिह्न होने के कारण जमालो उस छुरे को जी-जान से चाहती
है। उसका विश्वास है कि पास में रखने से छुरे के डर से
शैतान, चुड़ैल और साँप-बिच्छू सदा दूर रहते हैं।

उस मुहल्ले के हिंदू-मुसलमान नौजवानों ने अक्सर
सोचा—ऐसे छुरे से साग काटना हथियार की बेइज्जती
करना है। दोनों क्रौमों के नौजवानों ने जमालो से छुरे को
माँगा भी.....

मगर भला, वह कब देने वाली।

तब तक दंगा हो गया शहर बनारस में।

दंगे की खबर पाते ही बूढ़ी जमालो ने सारे घबराहट के
उस छुरे को झोपड़ी के बाहर ही छोड़ टट्टा बंद कर लिया।

और नौजवान हिंदू गोपाल ने सोचा—बूढ़ी जमालो का
छुरा हाथ लगे, तो दुश्मनों को मजा चखा दूँ।

नौजवान मुसलमान मुहम्मद ने भी उस चौड़े-लंबे छुरे को दंगा होते ही हथियाना चाहा ।

भपटा मुहम्मद जब बूढ़ी की मोपड़ी के पास आया, तो दूर ही से उसने देखा, गोपाल चौड़े छुरे को बगल में छिपाए कतराए जा रहा है ।

क्षण-भर बाद मुहम्मद और गोपाल एक दूसरे के सामने—अड़ोसी-पड़ोसी । छुरे के लिए हाथा-बाही । मुहम्मद को गोपाल ने घायल किया ।

उत्तेजित मुहम्मद ने दाँव-पेंच से बूढ़ी के उस चौड़े छुरे को गोपाल के पेट में डाल दिया ।

राम नाम सत्य है !

इसके बाद ही तो खून उतर आया उस आदमी की आँखों में, जिसने खून किया था । खून ! खून ! खून ! ताबड़तोड़ कई पड़ोसी हिंदू मारे गए !

आखिर एक जीवट के नौजवान ने मुहम्मद को भी धर दबाया, और जमालो के छुरे ने खूनी के खून का जायका लिया ।

अब पुलिस पलटन की दौड़ आई, और दोनों क्रौमों के दंगाई घरों में दबक रहे ।

अपने रास्ते लगने से पहले मुहम्मद को मारनेवाले नौजवान ने पुलिस के डर से, उस छुरे को कूड़ाखाने की ओर फेंक दिया । और, कूड़ाखाने के पास ही तो जमालो की मोपड़ी है ।

भोपड़ी के बाहर भगदड़ सुनकर भय से जमालो को अपने बरकती छुरे की याद आई। आह ! वह तो बाहर ही छूट गया।

झपाक से भोपड़ी का टट्टर खोल चुड़िया बाहर आ रही, और रात के अँधेरे में छुरा तलाशने लगी। थोड़े श्रम के बाद अनायास ही वह चौड़ा छुरा बूढ़ी को मिल गया।

मारे प्रेम के बूढ़ी जमालो ने अंधकार ही में अपने प्यारे पति के पवित्र छुरे को चूम-चूम लिया।

हैं ! छुरे में गाढ़ी चीज क्या लगी है ? जमालो के ओठ में गोंद-सा क्या सट गया। खून ? पानी ?

इसी वक्त पुलिस-पलटन के अफसरों ने टार्चों के प्रकाश में कूड़े-खाने पर बूढ़ी जमालो को एक चौड़ा छुरा चूमते देखा।

मुक्ता

प्रवाल-द्वीप की राजकुमारी का नाम था माया । प्रियतम द्वारा चोरी से चूमे जाने पर मुग्धा के कपोलों पर जो तप्त सुवर्ण-लज्जा बिखर जाती है, वह वैसी ही सुंदरी थी । वसंत के मंद-मंदिर मलयानिल के मधुर भोंकों से मुग्ध होकर जो मुकुल-मंडली चिटख पड़ती है, खुल और खिलकर नाच उठती है, वह वैसी ही भोली थी ।

प्रवाल-द्वीप के महाराज के और कोई संतान तो थी नहीं, वह कुमारी को प्राणोपम प्यार करते थे । जब महाराज दरबार में जाते, कुमारी पुरुष-परिधान पहनकर उनके साथ वहाँ जाती । कुमारी के तन पर धवल रेशम की लाल किनारे की घोंती होती, जिसे वह महाराष्ट्र-महिलाओं-सी कछनी काछकर पहनती । मगर उसका कोई भाग उसके मस्तक या वक्ष पर न होता । घोंती के ऊपर प्रशांत महासागर के एक द्वीप का बना गुलाबी रेशम का कुरता वह पहनती, जिसकी चौड़ी मोहरियों और नीचे की छोरों पर सोने के तारों से शाल्मली और अँगूर की पत्तियाँ बनी होतीं । कुरते के ऊपर वह हरे रंग की मखमली जाकेट पहनती, और उसमें भी सोने की

बारीक क़ारीगरी फ़िलमिलाती दिखाई पड़ती। उसके काले-काले केश दो भागों में विभक्त होकर गर्दन से वक्ष पर और वक्षस्थल से आजानु-प्रलंबित होते। माथे पर उसके सोने का हलका, सुगढ़ा, सकिरीट मुकुट होता और किरीट के बीच में शिव के तीसरे नेत्र की तरह एक श्रंडाकार, बड़ा, गुलाबी हीरा चमचमाया करता।

प्रवाल-द्वीप के प्राणी राजकुमारी को देखकर वैसे ही सभक्ति नमित हो जाते, जैसे किसी देवता के सामने।

महाराज नित्य दरबार में कुमारी को साथ ले जाते ; मगर केवल दो घंटे के लिये, इसके बाद वह राजहंसिनी-सी स्वतंत्र रहती। वह कभी उद्यान में विचरती, कभी मैदान में चौगान खेलती, कभी निकटस्थ उपवन में रसाल की झाल पर रजत-पालना झूतती। उसकी सात सहेलियाँ सदैव उसके साथ रहतीं। चौगान में राजकुमारी के आगे पीछे उसी-सी धवल पोशाक में, उसी-सी धवल-मुखी वे सब सहेलियाँ जब इधर से उधर दौड़तीं, तब मैदान मानो सप्राण होकर खिल पड़ता। ऐसा लगता, गोया हंसनियों की एक पंक्ति इधर से उधर झपट रही है।

सहेलियों के साथ उस दिन राजकुमारी समुद्र-तट पर खड़ी जीवन-कोलाहल सुन रही थी। तब के चराचर प्राणी एक दूसरे की बोली बोल और समझ लेते थे। तभी तो समुद्र के

अनेक प्रकांड प्रवाहों ने सुकुमार लहरियों के कान में गंभीर स्वर में कहा—“ओहो, अद्भुत सुंदरी है ! जग पुकारो ।”

“आओ, कुमारी !” लहरियों ने कल-कल राग में गाकर कहा—“हमारी छाती में पैंठकर एक बार नाचो, गाओ, और मुस्किराओ । जग जल-जगत् की सैर करो ।”

सहेलियों ने लहरियों को डाटा—“चुप ! धृष्ट, हमारी महती महिमामयी कुमारी को क्या कमी है, जो तेरे यहाँ जायँ ।”

कुमारी ने जलद-श्याम नेत्रों से लहरियों की ओर देखा । उनके इस बार देखते ही जल के अनेक जीव ऊपर उठ आए । जल-परियों ने पुकारा—“हमी बाहर आएँ ? हमें खेला-ओगी अपने साथ । ओह ! तुम्हारे चरणों कमल-से सुंदर और कामद भासित होते हैं । हमें उन चरणों में स्थान दोगी ?”

कुमारी ने लीला से कहा—“नहीं ।”

प्रवाल-बालों के एक दल ने प्रेम से अरुणतम होकर निवेदन किया—“हमें स्वीकार करो सुमुखि ! चाहे मुट्ठी में बाँवे रखो चाहे चरणों में—या गले में । हम धन्य हो जायँगे ।”

भ्रू-संकोच के साथ राजकुमारी ने कहा—“ना, मुझे तुम्हारे रंग से घृणा है । तुम खून के भाई मालूम पड़ते हो ।”

जल की नीली, पीली, चमकीली मछलियों ने आप्राह किया—“कुमारी ! हमें ही अपना लो ।” मगर इस समय

राजकुमारी की दृष्टि अनंत सीपों पर थी, जो मुँह खोले हुए शून्य की उपासना कर रही थीं ।

“ये कौन हैं ? क्या करती हैं ? हैं, ये ऊपर क्या देख रही हैं ? ये मेरा स्वागत क्यों नहीं करतीं ?”

जल-परियों ने अदब से कहा—“ये मुक्ति-अभिलाषिणी हैं । मुक्ति तो ऊपर ही से आती है न । इसी से ये उबर ही बराबर देखा करती हैं । ये नीचेवालों के व्यर्थ पर अपनी नज़र नहीं डालतीं ।”

“ये कब तक ऊपर ताकती रहेंगी ?” कुतूहल से कुमारी ने जल-परियों से पूछा ।

“जब तक इनकी मनोकामना पूर्ण न होगी ।”

“कौन पूरी करता है कामना ?”

“सुना है, ऊपर कोई घन-श्याम है—वही तो ।”

“मुक्ति होती कंसी है ?”

“सुना है—परमोज्ज्वल ।”

“उसका फल क्या है ?”

“परम तृप्ति । जब ये सीपें मुक्तिमयी हो जाती हैं, तब ऊपर-नीचे किसी को दाँत काढ़कर नहीं दिखातीं । भूख, प्यास, जल, वायु, सबसे परे हो जाती हैं । अतल में जा, आँखें बंद कर, अपनी प्रियतमा मुक्ति में तन्मय होकर विमुक्त पड़ी रहती हैं । सुना है, इन्हें महाआनंद मिलता है ।”

राजकुमारी ने गंभीर साँस खींचकर विमन भाव से कहा—

“हूँ।” सीपों ने जो उसकी उपेक्षा की, वह उसे बहुत खली। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह एक बार सीपों की मुक्ति देखती, तो पता चलता कि वह कितनी सुंदरी होती है।

इसी समय घर-घर-घर स्वर सुनाई पड़ा। जल-परियों ने कहा—“भागो राजकुमारी, घन-श्याम आ रहे हैं।”

राजकुमारी ने ऊपर देखा, घन-श्याम ही थे। मगर वह भागी नहीं। घन-श्याम तड़ित-पटका लहराते हुए झूम-झूमकर, घहर-घहरकर ऊपर से उज्ज्वलता की वृष्टि करने लगे। लहरें विमुग्ध भाव से नाचने लगीं। सीपों का हृदय आनंद से दोलायमान हो गया। बेहोश-सी होकर उन्होंने अपने मुखों को और भी प्रसारित कर दिया।



समुद्र ने देखा, प्रवाल-द्वीप के अनेक जल-पोत उसकी छाती चीरने के लिये भपटे आ रहे हैं। सेना-की-सेना- अस्र-शस्त्र और बड़े-बड़े रस्से लिए बढ़ी आ रही है।

“क्यों, क्यों?”

“प्रवाल-द्वीप की कुमारी ने अभाव का अनुभव किया है।”

“किस बात का अभाव? क्या उसके योग्य राजपुत्र नहीं मिल रहे हैं? इसलिये तुम देश-विदेश की परिक्रमा करोगे

“आह! नहीं।” राजसेवकों ने उत्तर दिया--“राजकुमार तो

अनेक हैं—महाकुमारी माया के चरणों पर लोटने के लिये चंचल, परंतु उन्हें उनकी चाह नहीं।”

“फिर ?”

“कुमारी को मुक्ति का अभाव है। सुना है, तुम्हारी सीपों के पास वह है। है न ?”

“है तो, है तो।” समुद्र सजल भाव से हाहाकार कर उठा—
“मगर तुम उन्हें उनकी मुक्ति से वंचित न करोगे। बेचारियों की बड़ी गाढ़ी कमाई है।”

“चुप धृष्ट !” राजसेवक तड़प उठे—“कुमारी माया की तुष्टि के लिये हम तुझे भी बाँध सकते हैं। जिस वस्तु के लिये कुमारी व्यग्र हैं, उसे संसार में कोई भी—वह सीप हो या समुद्र—अपने पास नहीं रख सकता।”

समुद्र चिल्लाता ही रहा, और राजसेवक उसकी छाती फाड़कर अतल में पहुँच गए। कुछ ही देर में शतशः सीपें अपनी मुट्टियों में भरकर वे बाहर आए।

कुमारी जलयान के एक सुंदरी प्रकोष्ठ में, मणि-मंडित चौकी पर, बैठी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हें और उनके हाथों की सीपों को देखकर वह खिल पड़ी।

“अपनी मुक्ति मुझे दो।” परतंत्र सीपों से मायाकुमारी ने कहा।

“प्राण ले लो कुमारी, पर मुक्ति हमारी न माँगो। वह सारी साधनाओं की सिद्धि और हमारी जन्म-भर की कमाई है।”

राजकुमारी से उत्तर-प्रत्युत्तर ! भवें तन गईं, बिबोष्ठ फड़क उठे, राजसेवकों को आज्ञा हुई—“इनके प्राण व्यर्थ हैं ; तुम लोग ले लो, और मुक्ति मुझे दे दो। मुझे प्राण नहीं चाहिए।”

यद्यपि रक्त रंग कुमारी को अप्रिय था, इसीलिये उस दिन उन्होंने प्रवालों का तिरस्कार भी किया था, मगर मुक्ति के लिये उन्होंने उसका भी स्वागत किया। संसार में सदा से मुक्ति के नाम पर रक्त बहाया जाता है।

राजदूतों ने सैकड़ों प्राण लिए ; मगर कुमारी माया को मुक्ति एक ही मिली। आह ! कैसी चमक थी उसमें। कुमारी ने देखा, उसके वक्ष-दर्पण पर उसका धवल मुख छप गया था। वह मगन ही उठी।

राजसेवकों ने मुक्ति की छाती को लोहे से छेद डाला। सहेलियों ने उसे सोने के सुकुमार तार में पिरोकर कुमारी माया के धवल कपोत-कंठ में सँवार दिया। कुमारी ने दर्पण में अपना मुक्ति-मंडित मुख देखा, तो अपने ही पर मुग्ध हो गई। नाचने लगी। सहेलियाँ भी इधर-उधर घूम-घूमकर थिरक-थिरक उठीं।

नाचते-नाचते रुककर कुमारी ने पुनः अपना सुंदर रूप दर्पण में देखा ; मगर इस बार उसे ऐसा लगा, मानो उसके कंठ में मुक्ति हँस रही थी।

“क्यों हँसती है ?” माया ने दर्पण में मचलकर पूछा।

“हँसी आती है इसलिये कुमारी !” मुक्ति बोली “कि माया मुझे मुक्ति समझती है ।”

“याने ? तू मुक्ति नहीं है ? फिर कौन है ?”

“मैं सीप का लोभ, लालसा और काल हूँ । माया के गले का चमकीला फंदा । मैं मुक्ति नहीं—मुक्ता हूँ ।”

मौकों चुनरी की खाध

अजीब लड़की थी वह। उसकी मनेमोहिनी चंचलता, उसका आकर्षक लड़कपन देखनेवाले आँखें फाड़-फाड़कर देखते थे। उसका नाम तुलसा था।

वह तुलसा के ब्याह का दूसरा दिन था। अभी उसके घर में मेहमानों और हित-नाते के लोग-लुगाइयों की भीड़ लगी ही थी। आँगन में फूल का पुष्पाच्छादित मंडप देवी-देवताओं की पूजन-सामग्रियों के साथ खड़ा मुक्करा रहा था। तुलसा एकत्र महिलाओं को अपनी लाल चुनरी दिखा-दिखाकर मारे प्रसन्नता के फूटी पड़ रही थी।

हाथों में लाल-लाल मंगलमयी चूड़ियाँ पहने, माथे पर सिंदूर धारण किए, आग-सी तेजोमयी तुलसा जब एक बूढ़ी पड़ोसिन को अपनी चुनरी दिखाने लगी, तो उसने उसकी माता से पूछा—“कै बरस की तुलसा हुई बहन ?”

“आठवाँ पूरा हो गया, तभी तो कन्यादान दे दिया गया है। पगली जब छ साल की रही, तभी अपने बाप से चुनरी पहनने के लिये लड़ा-झगड़ा करती थी। कहती थी, मुझे आज ही

ब्याह दो, मगर चुनरी जरूर मँगा दो। देखो न, इसे चुनरी क्या मिल गई, मानो संसार का राज्य मिल गया हो।”

बूढ़ी ने तुलसा की ठुड्ठी पकड़कर हिलाते हुए कहा—
“मैं ऐसे नहीं देखूँगी री; तू एक बार नाचकर और वही परसालवाला गीत गाकर दिखा, तो देखूँ।”

तुलसा से बड़ी-छोटी दूसरी लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। मगर वह झेपी नहीं, बल्कि अपने नन्हे-नन्हे, लाल-लाल महावर-मंडित पैरों को चमकाता हुई नाचने और गाने लगी—

मोंको चूनरी की साध !

मोंको चूनरी की साध !

तुलसा की मा आँचल में मुँह छिपाकर हँसने लगी; वह बूढ़ी आँखों में आँसू भरकर मुस्किराने लगी। तुलसा की सहेलियाँ अट्टहास करने लगीं; तमाम आँगन में हँसी की तरंगिनी लहराने लगी।



सन्नाटे में आकर तुलसा के पिता ने पूछा—“क्या हुआ ?”

किसी भीषण भावी भय से अभिभूत होकर उसकी मा ने पूछा—“क्या हुआ ?”

“शजब हो गया !” समाचार लानेवाले ने रोते-रोते कहा—
“जनवासे में वर को एक करैत ने काट खाया। वह देखते-देखते.....!”

समाचार क्या था, वज्रपात था। घर में कोहराम मच गया। चारों ओर हाहाकार का क्रूर नृत्य होने लगा।

इस अचानक रोदन के आक्रमण से चकराई तुलसा ने अपनी एक पड़ोसिन से पूछा—“क्या हुआ चाची?”

उसके मस्तक का सुंदर सिंदूर बरबस पोंछती हुई चाची ने उत्तर दिया—“अभागिनी, तेरा करम फूट गया!”

इतने पर भी कुछ न समझकर उस आठ वर्ष की बालिका ने अपनी मा की शरण ली—“क्या हुआ मा! तुम रोती क्यों हो? क्या ब्याह में रोया भी जाता है?”

“हाय मेरी रानी! ऊफ्! मेरी अभागिनी बेटी, तू लुट गई—हम लुट गए—रो-रो-रो!”

उसकी मा ने देखते-देखते उसके हाथों को सूना कर दिया। सारी चूड़ियाँ फोड़ डाली गईं। इसके बाद चुनरी की बारी आई। एक मैली धोती उसे देती हुई मा ने कहा—“उतार दे इसे! तेरे भाग्य में चुनरी नहीं है। तू महा-अभागिनी है।”

“ना...ना...ना...! मेरी चुनरी न छीनो! न छीनो! नहीं तो मैं सिर पटककर फोड़ लूँगी, जान दे दूँगी।”

वह मा के पास से, हाथ छुड़ाकर, उसी तरह गाती हुई भागी—

मोंको चुनरी की साध!

मोंको चुनरी की साध!

मगर औरतें कब माननेवाली। उन्होंने जबरदस्ती उसे धरकर उसकी चुनरी उतार ली, और उसे पहनने के लिये पुरानी-गंदी धोती दे दी।

अब तुलसा की हँसी गायब हो गई। चुनरी झिन जाने पर उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका सर्वस्व झिन गया। उसने वह गंदी धोती नहीं पहनी। नंगी ही आँगन में बैठकर रोने और चुनरी वापस माँगने लगी। लोगों ने प्यार से, दुलार से, मार से उसे समझाने की चेष्टा की; मगर व्यर्थ। वह रोती और अपनी साध की चुनरी माँगती ही रही। लोग उसे उसी तरह छोड़ श्मशान की ओर चले गए।

एक सप्ताह तक तुलसा के शरीर पर ज्वर—भयानक ज्वर—का कब्जा रहा। वह उसी तरह नंगी चारपाई पर पड़ी रही। रह-रहकर बेहोश हो जाती, और होश में आते ही आसा पास के लोगों से चिल्लाकर कहती—“मोंको चूनरी की साध!” मगर लोग न पसीजे। पसीजते भी कैसे? समाज का नियम जो टूट जाता। भला, विधवा बालिका चुनरी पहनेगी!

वह अंतिम साँस ले रही थी। उसकी मा सिसकती हुई उसकी ओर ताक रही थी। एकाएक आँख खोलकर उसने म-से कहा—“मा, मोंको चूनरी की साध!”

माता का हृदय हाहाकार कर उठा। मेरी बेटी चार गज सूत की चुनरी के लिये मरी जा रही है समाज और रिवाज

उसे, विधवा होने के कारण, वह नहीं दे सकते। आग लगे इस समाज में। वज्र पड़े ऐसे रिवाज पर। मैं अपनी रानी की साध पूरी करूँगी। उसे चुनरी दूँगी।

पति ने कहा—“ना !”

मुहल्लेवालियों ने कहा—“ना !”

मगर माता का हृदय नहीं माना। वह झपटकर चुनरी ले आई। तुलसा सुकैद छींट के उस लाल वस्त्र को देखकर कमल की तरह खिल उठी। चमककर बिछौने से उठ पड़ी, ओढ़ने के बाहर हुई, और नंगी ही ज़मीन पर उतरकर उसने मा के हाथ से चुनरी छीन ली। जल्दी-जल्दी शरीर पर उसे सजाती हुई वह एक बार फिर गुनगुनाने लगी—

मोंको चुनरी की साध !

मोंको चुनरी की साध !

मगर वह बहुत कमज़ोर हो गई थी। उस खुशी का भार न सँभाल सकी। चुनरी पहनते-पहनते ज़मीन पर धम्म से गिर पड़ी। दो-तीन हिचकियाँ लीं—और बस। साध पूरी हो गई। श्मशान तुलसा को उसकी चुनरी के साथ-साथ अपनी भयानक हँसी—चिता—की गोद में हो-होकर उठा लिया !

पिशाची

बाबू श्रीलाल ने अभिवादनोंपरांत अपने मित्र रामनाथ के नख-शिख का निरीक्षण किया, और वह किंचित् आश्चर्य से चमक उठे—“वाह भई, अभी तक यह होलीवाला कुरता बदला नहीं ? अजीब देहाती हो। शहर के लोगों ने रास्ते में तुम्हें देखकर क्या समझा होगा ? और—अररर ! ज़रा पीछे की ओर घूम तो जाओ। नहीं घूमते ? मुझे इस तरह घूर क्यों रहे हो ? लो, अगर पीछे घूमने में तुम्हारी नज़ाकत को ठेस लगने का अंदेशा है, तो मैं ही घुमाए देता हूँ।”

“आ...हा ! भले बने हो नाथ !” दोनों कंधे पकड़, बरबस रामनाथ को पीछे मोड़कर और उन्हें ँड़ी से चोटी तक पान-पीकर-रंजित, कीचड़-कर्म से रंगे देखकर श्रीलाल ने व्यंग्य किया, मानो यह व्यंग्य रामनाथ की सहन-शक्ति से अधिक था। वह एक बार आवेश से दमककर नीरस गंभीरता से बोले—“मैं तुम्हें उलाहना देने आया हूँ।”

“देना उलाहना।” अपनी स्वाभाविक अगंभीरता से श्रीलाल ने कहा—मगर पहले मेरे महज एक सवाल का जवाब दे

लेने के बाद। यह बताओ कि यह किस ग्रामीण प्रेयसी ने तुम्हारे यशःशुभ्र परिधान पर कीचड़ उछाला है, और यह मल-मूत्र आपको इतना अधिक प्रिय क्यों है, जो आप इसे इतने दिनों बाद भी अपनी पीठ पर लादे फिर रहे हैं ?”

“बनो मत श्रीलाल !” रामनाथ ने सावेश उत्तर दिया—
“तुम सब कुछ मज्जे में जानते हो। जो मोटर पर बैठकर मटरगश्ती करना जानता है, वह उसके उछले हुए कीच-कदर्म को यदि न पहचाने, तो यह घोर लज्जा का विषय है।”

“अच्छा !” जैसे ज़रा सावधान होकर श्रीलाल पुनः रामनाथ के रंगीन कपड़े देखने लगे—“यह मोटर की माया है। है तो बेशक वैसी ही जरूर, मैंने पहचानने में जल्दी और देखने में भूल की। कितनी भी कोई प्रेयसी या ग्रामीण हो, तुम-से भले आदमी पर कोई इस तरह गंदा कीचड़ नहीं डाल सकती। ओह ! छिःछिः ! अब तो घृणा लगती है, न-जाने किस बेवकूफ की मोटर थी, और न-जाने कौन अंधा उसे ‘ड्राइव’ कर रहा था। यदि मेरे कपड़े इस तरह खराब हुए होते, तो—खुदा कसम !—मोटरवाले को मैं जूता खींच-कर मार देता। किसकी गाड़ी थी ? तुमने नंबर क्यों नहीं नोट कर लिया ?”

“झूठ न बोलो श्रीलाल, तुमने सब कुछ देखा था, और उस पर भी मोटर-सवारी के मद में मुस्किरते हुए सर्र से निकल गए थे। कल आठ बजे रात, लालगंज की

चौमुहानी के बाएँ मोड़ पर । याद पड़ी ? सोचो, वह तुम्हीं थे न, या तुम्हारा शैतान—एक और आदमी के साथ—उस मोटर पर जा रहा था! मुझे देखकर भी तुमने नहीं देखा था । शायद इसीलिये कि तुम मोटर पर और उस हैट-वारी गोरंटे की बगल में थे । दूसरे की मोटर पर तुम्हारे मिज़ाज का पारा जब इतने ऊँचे उठ गया था तब, यदि कभी तुम्हारी अपनी गाड़ी होगी, तो क्या करोगे । मैं तो इसी चिंता से, कल रात ही से, हैरान हूँ । मुझे याद है, किसी दिन तुमने कोई सेकेंड-हैंड 'कार' खरीदने की इच्छा प्रकट की थी । बात मानो, अब ऐसी गलती मत करना, नहीं तो मोटर खरीदते ही तुम्हारा मिज़ाज ऐसा बिगड़ जायगा कि बिना दो-चार खून किए तुम मानोगे नहीं । दिल्लगी समझकर मुस्कराओ मत । मैं सच कहता हूँ ।”

श्रीलाल अपनी निंदा सुन सकते थे, मोटर की नहीं ; क्योंकि फिलहाल उनका प्रेम सब स्थानों से हटकर मोटर ही में आकर एकत्र हो गया था । वह मोटर को आधुनिक सभ्य संसार में विभूति-विलास का अन्यतम साधन समझते थे । उन्होंने कहा—“देखो जी, जब तुम मोटर की निंदा करने लगते हो, तब मुझे ऐसा लगता है, मानो तुम्हारी दुर्बलता तुम्हारे सिर चढ़कर बोल रही है । यह अनमिले का संन्यास मैंने बहुत देखा-सुना है, नहीं तो फी-जमाने में मोटर के खिलाफ तो कोई कुछ कह ही नहीं सकता । तुमने

सुना है, पढ़ा है कि नहीं। राष्ट्र-भाषा हिंदी के किसी पुरातन-पंथी कवि ने मोटर का वर्णन करते हुए उसकी तुलना चंचला लक्ष्मी से की है, पूर्ण रूपक बाँचा है। मुझे वह दोहा बहुत पसंद है, सुन लो—

अति चपला, अतिचंचला, सदा नेह-आधार ;

चक्र-पाणि-अनुगमिनी, रमा ? कि मोटरकार ?”

मालूम पड़ता है,” राननाथ ने कहा—“इस दोहे का निर्माता लक्ष्मी का बड़ा भक्त है। अजी हज़रत, महज़ रमा-सी होकर कोई महिमामयी नहीं बन सकती। तुम्हारे दोहे के कवि से भी किसी पुराने ने कहा है, और ख़ूब कहा है—“हलाहलं नैव विपं, विपं रमा।’ और, रमा चाहे उतनी विषवती न हों, पर यह मोटर तो सर्पिणी से अधिक ज़हरीली, व्याघ्रिणी से अधिक हिस्त्रिणी, मतवाले शराबी से अधिक उम्मादिनी और धमधों से भी अधिक दूसरों पर कीचड़ और धूल उछालने-वाली है।”

“मोटर से इस बीसवीं शताब्दि को अनेक लाभ हुए और हो रहे हैं। रेल रहे या उलट जाय, एक मोटर ही विश्व के कोने-कोने तक लोगों को पहुँचा सकती है। कोई बीमार पड़े, और पचास कोस पर भी योग्य डॉक्टर हो, तो वह चुटकियों में प्राप्त हो सकता। जीवन का सुख लेने के लिये तो यह अभूतपूर्व संगिनी है। मेरा तो खयाल है—यार हो, गुलज़ार हो, मय हो, किजाँ हो, मैं हूँ और मेरी मोटर हो, तो

किन्हाल मुझे स्वराज्य की उतनी जरूरत नहीं। मैंने अनेक मोटरवालों को टटोल देखा है। जीवन-व्यापार की दृष्टि से चाहे वह 'स्वराज्य ! स्वराज्य' दिन में दस-पाँच बार पुकार लें, पर उनके भीतर के भीतर में स्वराज्य की न तो वेंसीकामना है, जैसी मोटरवाजी की, और न जनता के दिल में पैठने की वेंसी चाह है, जैसी मोटर में बैठने की। अस्तु, महोदय ! कीचड़ पड़ गया है, तो कुरता उतार दीजिए, घोती के भी बाहर हो जाइए, मैं सब धुलाए देता हूँ। साथ ही दंड-स्वरूप उसी मोटर पर चढ़कर घूमने के लिये आपको न्योता भी देता हूँ, जिसके चंचल, चारु चरणों के पंक से आपके वस्त्र चर्चित हो गए हैं। अब वह मोटर मेरी है। मेरे साथ कल जिस गोरे को आपने देखा था, वह यहाँ के मशहूर इंजीनियर मिस्टर फारेस्टर थे। उन्हीं से वह गाड़ी मैंने खरीदी है। नया मॉडल 'व्यूक' है। केवल एक वर्ष उनके यहाँ रही है, चली बहुत कम है। ? नई 'व्यूक' पाँच हजार से अधिक ही में मिलती है। मिस्टर फारेस्टर ने दो हजार तीन सौ रुपए में मुझे वह गाड़ी दी है। कल मैं उसका ट्रायल ले रहा था। अभी बिलकुल नई है, लकड़क। आज शाम को चलकर देखो, अजीब गुदगुदी-भरी है वह गाड़ी। चढ़ते ही ऐसा लगता है, मानो आसमान पर चढ़ गए। क्या.....? माफ़ करो, अब ज्यादा प्रश्नोत्तर नहीं। भिखना—अरे भिखना ! एक घोती ला, और मेरे संदूक से वह नया कुरता भी निकाल ला।”

श्रीलाल अपने हाथ से रामनाथ के कुरते के बटन खोलने लगे। क्षण-भर के लिये अमीर के शिष्टाचार में गरीब का उलाहना घुल गया।



शाम को ठीक छ बजे शोकर ने गाड़ी लाकर बाबू श्रीलाल के दरवाजे पर खड़ी की, और फिर बैठक में जाकर सलाम करते हुए निवेदन किया—“मोटर तैयार है।” तुरंत ही रामनाथ के साथ श्रीलाल बाहर आए। शोकर ने उनके लिये गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। वह बैठे। सेल्फ स्टार्टर-संपन्न गाड़ी, क्षण-भर बाद ही, शहर की सड़क पर, सर्पिणी-सी सर्र-सर्र सरकने लगी। आँधी-सी उसकी गति थी, चिग्घा-ड़ती सिंहनी-सा उसका स्वर। उसके चलते ही जैसे आस-पास का वातावरण काँपने लगा।

“कहो,” श्रीलाल ने मोटर के एक कोने में नज़ाकत से चठंगते हुए पूछा—“कैसी चाल है?”

“बहुत अच्छी। यह तो नाम-मात्र को सेकेंडहैंड कार है, असल में है बिल्कुल न्यू; मगर एक बात है...”

“वह भी कहो।”

“मोटर पर बैठने से ऐसा अवश्य लगता है, गोया इंद्रासन पर बैठा हूँ। रास्ते के अन्य राइगीर तुच्छ मालूम पड़ते हैं। मन में अनायास ही आत्माभिमान का शैतान मस्ती से मुस्कराने लगता है।”

“गप्पी हो, कमजोर-दिल हो और बनते भी हो। मैं तो केवल आनंद लेता हूँ। मेरे मन में न तो शैतान मुस्कराता है, और न इंसान।”

इसी समय किसी राहगीर पर सेरों धूल मोटर के पहियों से उड़कर पड़ी। इसे रामनाथ ने देखा। श्रीलाल का ध्यान भी पथिक के क्रुद्ध मुख की ओर आकर्षित किया।

“क्या है ?”

“मुनो, वह गाली दे रहा है।”

“मोटर पर बैठकर कम्युनिज्म सोचना और परिस्थिति से परेशान राहगीरों की नाक-भों के उत्थान-पतन पर ध्यान देना मूर्खता है। यहाँ तो आनंद-ही-आनंद का खयाल मुनासिब है।”

“ओ ओ ओ !” शोफर को लक्ष्य कर रामनाथ चिल्ला उठे—“बचाना उस बोझवाले को।”

“ए सु अ र !” शोफर ने अपनी ड्यूटी अदा की—“बहरा है साला, सुनता नहीं।”

बेचारा बोझवाला, प्राण बच जाने से प्रसन्न और मुक्त की गालियों से क्षुब्ध, क्षण-भर के लिये खड़ा हो गया, और मोटरवालों को इस तरह गेरने लगा, जिसका आशय यह था “बच्चू, सड़क पर उतरकर जबानी कैंची चलाओ, तो सारी मोटरबाजी ठेंगे में मिला दूँ।”

रामनाथ ने असंतुष्टभावेन शोफर की शाब्दिक प्रतारणा

की—“गाली क्यों देते हो ? एक तो अंधाधुंध हाँकोगे, और उस पर गाली।”

“अरे हुजूर, ये पैदल चलनेवाले निरे लट्ठ होते हैं। इन्हें यह तमीज ही नहीं होती कि सड़क पर आदमी ही नहीं, गाड़ियाँ और मोटरें भी चलती हैं। वह कुचल जाता, तो ? जान तो मेरी मुसीबत में पड़ जाती।”

“इसीलिये मैं तो कभी-कभी यह सोचा करता हूँ कि मोटरों के लिये सड़कें ही अलग होनी चाहिए। और सर्व-साधारण के रास्ते में मोटरें न चलनी चाहिए। इससे केवल चंद पैसापतियों को मजा मिलता है, कितने ही गराबों की जान खतरे में रहती है।”

रामनाथ ने श्रीलाल से पूछा—“यह शोकर कहाँ का है ?”

“जहाँ की गाड़ी हुजूर !” स्वयं शोकर ने उत्तर दिया—“छ महीने से मैं फारेस्टर साहब की नौकरी में था, अब गाड़ी के साथ ही सरकार के यहाँ चला आया हूँ।”

“अच्छा जी !” रामनाथ ने शोकर से पूछा—“तुम्हें कुछ मालूम है, साल-भर में इस गाड़ी ने फारेस्टर साहब के यहाँ कितने खून किए हैं ?”

“हा हा हा !” श्रीलाल हँसने लगे—“अरे यार, सब गाड़ियाँ खूनी नहीं होतीं। इससे एक भी ‘एक्सिडेंट’ आज तक नहीं हुआ।”

“नहीं हुजूर !” शोकर मोटर का चक्र सँभालते हुए बोला—

“इस नजर से यह बड़ी ही खराब गाड़ी है। इसीलिये तो साहब ने इसे पानी के दामों निकाल दिया है। एक ही वर्ष में इस गाड़ी से तीन एक्सिडेंट हुए। एक बार एक कुत्ता दबकर मर गया, उस वक्त खुद इंजीनियर साहब हाँक रहे थे, और दूसरी बार एक गाय रवारवी में सड़कन लाँच सकने के कारण फूट की तरह बिखर गई। तीसरी बार एक किसान की जान जाते-जाते बची। इन्हीं घटनाओं के कारण साहब ने इस गाड़ी को हत्यारिणी समझ लिया है।”

“सुनते हो।” रामनाथ ने श्रीलाल को छेड़ा—“आप बाबू साहब और हिंदू होकर ऐसी सवारी पर चल रहे हैं, जिसने श्वान-हत्या और गोहत्या तक की है। ओह, उतारो मुझे। मैं बाज़ आया इस राज़सी आनंद से। यह मोटर नहीं, पूरी दानवी है।”

इस बार श्रीलाल ज़रा प्राभावित हुए—“क्यों जी,” उन्होंने शोकर से पूछा—“सचमुच इस गाड़ी से गोहत्या हुई है?”

“जी हाँ हुज़ूर ! इसमें झूठ बोलने की क्या बात है। मगर आज तक आपके एकबाल से मेरे हाथों एक भी दुर्घटना नहीं घटी।”

“यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।” रामनाथ ने कहा—“अभी तो इस गाड़ी की उम्र बहुत है, और तुम्हारी भी। समयानुसार यह हौसला भी पूरा हो जायगा। मेरा तो यह

अनुमान है कि प्रत्येक मोटर यमराज की दूतिका है, मृत्यु की बहन है। दुनिया की हर एक मोटर-गाड़ी के पहिए बेकसूरों के खून से रंगे हैं।”

“झूठी बात — झूठी बात !” श्रीलाल आवेश में आ गए—
“कहाँ का मैं तुम्हें घुमाने लाया। ऐसा रोना तुमने शुरू किया कि सारा मज्जा मिट्टी हो गया। अजी हज़रत ! मोटरें हत्या ही नहीं उपकार भी करती हैं महात्मा गांधी और उनके लेफ़िनेंटों से मोटरों की महिमा पूछिए।”

“पूछिए आप। मैं सब कुछ पूछ चुका हूँ। स्वयं महात्माजी के माथे पर मोटर की एक हत्या नाच रही है। तुम तो शायद अखबार पढ़ते ही नहीं, भूल गए उस पहाड़ी ठाकुर की मृत्यु, जिसके सिरहाने अस्पताल में बैठकर महात्माजी मोटरों की निंदा कर चुके हैं ?”

श्रीलाल निरुत्तर-से हो गए। धीरे-धीरे जैसे रामनाथ की तक-प्राणली का उन पर प्रभाव पड़ने लगा। कम-से-कम इस हत्यारिणी मोटर के खरीदने पर उनके मन में पश्चाताप होने लगा। रात अंधेरा था, और सड़क पर दोनो ओर के गुंजान वृत्तों के कारण अंधकार का आकार और भी विकराल होयगा। था। सामने से एक और मोटर आती दिखाई पड़ी। श्रीलाल ने देखा उसके दोनो प्रकाशक नेत्र ऐसे लगते थे, जैसे किसी राक्षसी के राक्षसी ? हत्यारिणी ? श्रीलाल के रोंगटे अनायास ही खड़े गए। उधर से आनेवाली मोटर इधरवाली

पर पसेरियों धूल उछालकर साफ निकल गई। श्रीलाल और रामनाथ मुँह पर रूमाल लगाकर रह गए। इसी समय बीच सड़क से किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। शोफर ने तेज रोशनी से सड़क की जाँच की। देखा, एक छोटा-सा मनुष्य एक ओर पड़ा मुर्ग बिसमि-सा तड़क रहा था। रामनाथ ने भी देखा, श्रीलाल ने भी। दोनों ने एक साथ ही शोफर को ललकारा—“गाड़ी रोको। मालूम पड़ता है, जाने-वाली मोटर खून करती गई है।”

गाड़ी रोककर तीनी ने देखा, कोई गरीब देहाती बालक कमर तक कुचला, अर्ध-मृतकावस्था में तड़प रहा था।

“क्या हुआ रे !” शोफर ने पूछा।

मुँह से कुछ न बोलकर जानेवाली मोटर की दिशा में बेचारे बालक ने संकेत-मात्र कर दिया।

“ओह !” रामनाथ उबल पड़े—“हत्यारे, कायर ! पाजियों ने मुँह कर देखा भी नहीं। नाश हो ऐसे हरामजादे मोटर-वालों का !”

“कहाँ का रहनेवाला है रे।” शोफर ने पुनः प्रश्न किया।

“मधुपुर का...” धीरे से बालक ने उत्तर दिया। उसका तड़पना देखकर दर्शकों का कलेजा मुँह को आने लगा।

मधुपुर पास ही का एक गाँव था। शोफर से समाचार पाकर शत-शत प्राणीय स्त्री-पुरुष घटना-स्थल पर दौड़ आए।

कुशल इतना ही हुआ कि दम तोड़ने के पूर्व बालक ने अपने पिता को बता दिया कि वह श्रीलाल की गाड़ी से नहीं घायल हुआ था। असली हत्यारिणी तो फरार हो गई !

बालक के दुःखद और करुण अंत पर सारा गाँव रोने लगा, माताएँ अपने बच्चों को छातों से चिपका कर सिसकने लगीं। श्रीलाल भी भर उठे, छलक पड़े।



दूरी अधिक होने-पर भी श्रीलाल ने पैदल ही घर लौटने का निश्चय किया, और निश्चय किया कि अब वह कभी……।



टीला और गड़ढा

नागनाथ ।

हुआ क्या—अशेष-मुख श्रीशेष नाग ने धरती का भार एक फन पर से उतारकर दूसरे पर धर दिया, और बस, यह दुनिया ढोलमडोल उठी ! भीतर गड़गड़ाहट, बाहर कड़कड़ाहट—नीचे नाश, ऊपर अंधकार !

धरित्री के स्नेह से पोषित विविध विबुधों ने नागराज शेष महोदय से जवाब तलब किया—“तुमने सँभालकर फन क्यों नहीं बदला ? तुम्हारी ज़रा-सी चूक से अनेक निरपराध जीव-जंतु बेमाल ही विकराल काल के गाल में चले गए ! पृथ्वी के प्राण क्षत-विक्षत हो उठे—हाय रे !”

बिगड़कर बूढ़े वैज्ञानिक ब्रह्माजी ने कहा—“सृष्टि-सी ज़िम्मे दारी-भरा काम कभी करते, तो ऐसी लापरवाही से नाश न कर देते । शेष ! नाश के महादेव तुम नहीं हो ।”

नत-फन, उन्नत-मन नागराज बोले—“पितामह ! अपराध क्षमा... । जो कुछ भी हुआ है, उन्हीं की आज्ञा और इच्छा से ।”

“पृथ्वी पर पाप बढ़ते हैं । पापी प्रकुल्लित हो, प्रभु को भूल;

मद-फूल, हवाई रथों से झूमते-घूमते हैं—जमी भूरि भारों-वाली हो जाती हैं। मेरा सिर फिरने लगता है। देखिए।”

“और क्या...?” चकित विधाता ने नागराज की ओर देखा। वह एक बार पुनः पृथ्वी का भार एक से दूसरे फन पर उछाल रहे थे। फिर कोलाहल, फिर अंधकार, फिर डग-डग मग-मग विपत्ति-प्रलय फिर- फिर—!

घरती का सायंकाल ऐसा असाधारण अवीरी नज़र आया जैसा बीरों के रक्त से लाल रणखेत !

और, क्षितिज के उस पार वज्राक्षरों में लिखा गया—
“उन्हीं की आज्ञा और इच्छा से।”

टीला और गड्ढा परम पड़ोसी...

मगर व्यवहार में एक दूसरे से छत्तीस ! गढ़ ने समझाया—
“भाई टीले ! बेशक तुम बड़े हो, पर ही उसी महाप्रभु के पुत्र जिसके बच्चे हम सभी हैं। बहुत तनो मनो बनो मत भाई, ज़रा ऊपर की बातें मुझ नीच को भी बतलाओ... ..!”

हुँह !” नफरत से नाक फुलाकर टीला बड़बड़ा उठा—
“दिन में भी अंधार काले गड्ढे ! तेरे भाई उल्लू और चम-गीदड़ ही होंगे। मैं ऊँच-वंशी श्रीमान टीला हूँ। शुक्-सारिकाओं का प्रेमी, राजहंसों का आश्रयदाता। मैं जैसा हूँ, वैसा ही सदा से हूँ, और सदैव रहूँगा। तू तो अँधेरे का अँधेरा ही है, और रहेगा। मेरी तेरी कोई भी बराबरी या बिरादरी नहीं।”

“हम एक ही प्रभु की संतान...” गढ़े ने नम्रता से ठंडी साँस लेने की चेष्टा की, मगर टीला बीच ही में कोलाहल-स्वर में चिल्ला पड़ा—“चुप रह ! तू काले शैतान की संतान है, और मैं प्रकाशमान प्रभु की ! हम दोनों भाई-भाई नहीं, महाराज और नाई हैं ।”

इतने में देव दिवाकर की एक दिव्य किरण मुस्कराती, लहराती, अभागे गढ़े की छाती में पैठकर इतराती नाचने लगी । उस घोर अंधकार में वह एक ही किरण ऐसी खिली, जैसे सवन-श्याम के विस्तृत वन पर बिजली ।

पागल प्राणी ।

टीले के मस्तरूपर मुकुट की तरह श्रीपृथ्वीनाथ का महल शोभायमान था ।

गढ़े के अधर पर, राम-नाम की तरह, एक हलकी-सी-भोपड़ी ज़रा भी विपरीत वायु में काँपती नज़र आती थी । उसमें प्रभु का कोई पागल पुत्र रहता था । दुबला, रूखा, अध नंगा और दिन-रात ‘राम राम !’ पुकारनेवाला ।

पृथ्वीपति भी प्रभु का पागल ही था । मगर उसका पागल-पन सावरण था । दुनिया की दौलतों से भरपूर पृथ्वीपति पूरा शराबी था । हालत यह थी कि उसके घर के छोटे बच्चे और औरतें तक शराब पीती थीं । कोई स्वास्थ्य के और कोई सुख-विलास के नाम पर !

और, शराब ही का नाम तो खाना-खराब है । इसलिये बाहर

से साफ और बड़े मालूम पड़ने पर भी पृथ्वीपति के परिवारी काले दिल और चूद्र वृत्तियों के थे।

प्रभु की प्रेरणा और जैसे के प्रभाव से पृथ्वीपति इतने प्राप—इतने पाप—करते थे कि टीले के नीचे रहनेवाले प्रजा-पड़ोसी पूरे परेशान हो उठे !

गढ़ के अधर पर, भोपड़ी में, दुखियों की भीड़ लग गई। सभी भूखे, रोते, दरिद्र.....!

पृथ्वीपति के अभागे सताए.....!

सबकी दुख-कथाएँ और टीले पर रहनेवालों की ज्यादातियों को सुन, रुखा साधु जरा मुस्कराकर बोला—“उन्हीं की आज्ञा और इच्छा से।” साधु अपने ‘उन्हीं’ का नाम पुकारने लगा—
राम ! राम ! प्यारे राम !”

भोग में.....“राम !”

श्रीमान् पृथ्वीपति अपने पेशगाह में अनंत कुसुम-सुकुमार सुंदरियों के साथ विहार और सुरापान कर रहे थे ! सामने, सितार पर, कोई कलाकार बहार राग की तरंगें उतार रहा था।

मदमस्त पृथ्वीपति के लिये संगीत शोभा को बात थी, न कि समझदारी-भरा एक महान् वेद...! लेकिन पृथ्वीपति, बिना समझे भी, सब कुछ समझते थे। कहते—“कहा है, सोने में सभी गुण एकत्र हैं। वस, जिसने सोने-टके को साध लिया, वही महान् साधु है। वह चौसठों कलाएँ जानता है।”

पृथ्वीपति ने भक्त में कलाकार से, बुरे रूप से, पूछा—“यही राग बाहर है ?”

“जी हाँ, सरकार !” कलाकार ने नम्रता दिखाई ।

“यह बाहर नहीं, भस्वमार राग है । बेवकूफ !”

कलाकार नम्र ही रहा, मगर हड़—“हुजूर ! बेवकूफ उसे कहना चाहिए, जो बिना जाने-बूझे व्यर्थ की बातें बोले ।”

“तो मैं बेवकूफ ? मैं अज्ञानो ? पाजी, रंक, ठहर...।”

कलाकार के हाथ से सितार छीन पृथ्वीपति ने पूरे जोर से उसके माथे पर दे मारा ।

आरक्त-मस्तक होने पर भी कलाकार सत्य से विरक्त न हुआ । गंभीरता से मुस्किराकर बोला—“मूर्ख ही नहीं, पृथ्वी-पति ! तुम पागल भी हो ।”

पृथ्वीपति के अनेक समर्थक—पालतू जल्लाद भी थे, जो अपने स्वामी के कोप-भाजनों के प्राण भी ले लेते थे । वे बुलाए गए ।

जल्लादों के हाथों में कलाकार को सौंपते हुए पृथ्वीपति ने कहा—“इस दुर्मुख के टुकड़े उड़ा दो ।”

कलाकार को लेकर जल्लाद बढ़े । उसी वक्त नीची झोपड़ी से एक दर्दीली आवाज आई—“राम ! राम ! राजा राम !”

“कौन शोर मचा रहा है ?”

झोपड़ीवाला भिखमंगा ।

“भिखमंगा—! भोपड़ीवाला ! मेरे ऐश के वक्त राम का नाम ले ! वह चाहता क्या है ?”

“सज्जा-सज्जा...!ऐश के वक्त राम का नाम हराम है।”

“हाँ...मारो पाजी को ! उसका गला घोट दो । राम का बच्चा....!”

पतन...!

क्षण-भर बाद पालतू जल्लाद बेचारे भोपड़ी-वासी बैरागी को हंटरों से हनने लगे !

और वह मस्त, अत्याचारके तार पर ही, बारंवार धर्मा वतार प्रभु को पुकारता रहा ।

साधु के दुबले तन की घञ्जियाँ उड़ गईं, मगर उसके मुख से राम का प्यारा नाम अविराम निकलता ही रहा ।



उसी वक्त तो शेषदेव ने पृथ्वी को अपने एक फन पर से दूसरे पर उछाला ।

विधाता और देव-मंडल चकित ही रहे । जमीन पृष्पपोषल के पत्ते-सी हिलने लगी । हंटर चलानेवाले जल्लाद गढ़े के मुख में समा गए । टोला हिला, और ऐसे, जैसे समुद्र में काठ का टुकड़ा ! उसके मस्तक का मुकुट, वह महल, मरमराकर जहाँ-का-तहाँ बैठ गया—ढेर हो गया । उसके अंदर की विभूतियाँ मिट्टी हो गईं । श्रीपृथ्वीपति संपत्ति, सुंदरियाँ और सुरा, सभी समाप्त !

टीला भयानक दहलता दिखाई पड़ने लगा। युगों बाद, महान् विपत्ति-काल में आज उसे अपने अंधे—पड़ोसी गढ़े की याद आई, सो भी स्वार्थ से।

“अरे गढ़े-गढ़े !” टीले ने काँपती आवाज़ दी।

“हाँ भाई बढ़े-चढ़े !” गड्ढा बोला।

“पृथ्वी काँप क्यों रही है ?”

“मुझे क्या पता भाई ! पृथ्वीपति के पाप बढ़े होंगे।”

“अरे, गढ़े ! मैं मरना-गिरना चाहता हूँ—बचा मुझे...।”

श्रूमता टीला बोला।

“स्वागत है भाई ! मेरे हृदय में घुस बैठो !—वहाँ तुम्हारे लिये अभेद प्रेम है। और, जहाँ प्रेम हो, वहाँ भय नहीं—आओ !”

“नहीं रे ! तुझसे मिलने में मेरा पतन होगा,—नहीं रे !” गिरते-गिरते टीला भरने-सा रोने लगा।

और क्षण-भर बाद, भूकंप के धक्के से पतित टीला, गढ़े के हृदय में, गायब हो गया।

विश्वास के अनुसार टीले का पतन और नाश हुआ, तथा गढ़ा प्रेम-भरपूर होकर मुस्किराने लगा !

लेकिन वह रूखा साधु—भूकंप और प्रलय से अपरिचित—अपना ही राग अलापता रहा। वही ‘राम ! राम ! प्यारे राम !’

संगीत-समाधि

इंदौर-नामक नगर में, बरसों गुजरे, दो कलाकार रहते थे।
वे न तो कवि-नाटककार थे, न नर्तक या चित्रकार ! फिर वे
कौन थे ?

उनमें एक था गायक और दूसरा वीणकार ।

उन दोनों में गोश्त नाखून-सी दोस्ती थी ।

गायक गाने लगता, वीणकार उसके कंठ-स्वर को यंत्र-स्वर
से सजाने—और ‘टोड़ी’ हो या ‘पूरिया,’ ‘जौनपुरी’ हो या
‘मुल्तानी’—इंदौर की सड़क से राजमहल तक स्वर्गों का तार
बँध जाता था ।

वे भीख माँगते थे । और, हमने सुना है, एक बार इंदौर
के एक महाराज ने भी, सड़क के किनारे जनता में खड़े होकर,
उन कलाकारों का कमाल देखा था ।

महाराज ने पुरस्कृत किया उन्हें मुक्ताहार देकर, जिन्हें राजा
के जाते ही कलाकारों ने दो-दो पात्र मद के लिये कलालों के
हवाले कर दिया ।

संसार ने कहा—“वाह, कलाकार ! तुम्हारा हाथ चूम लेने
(और गला काट लेने) क्राबिल है—तुम कमाल हो कमाल !”

और, स्वर्ग में भी कलाकारों की सफलता से कोलाहल मचा ! इंद्रासन हिलने लगा ! क्षण-भर कान लगाकर स्वर्ग के राजा ने भी पृथ्वी के कलाकारों का गान-तान सुना-ओह ! स्वर्गीय !

वह घबराया—क्या ये कलाकार बारंवार स्वर्ग को बनाएँ-बिगाड़ेंगे ? जो आज स्वर्ग रच सकता है, जरूर वही कल स्वर्ग के राजा—इंद्र—को अपदस्थ भी करना चाहेगा ।

“दौड़ो हे तेज ! हे वायु ! हे शक्ति ! हे काल !” देवेंद्र व्यग्र चिल्ला उठा—“देखो, आदमी कलाकार बनकर मेरा सत्रेनाश करना चाहता है ! नाश हो कलाकार का !”



इधर इंदौर के छुटभैए गवैयों के घरों में चूहे डंड पेल रहे थे, क्योंकि उक्त सुरीले और निःस्पृह कलाकारों के सामने बेसुरे और लोभी चापलूसों की एक भी न चलती थी ।

मगर मनुष्य से अपराजित रहने पर भी अच्छे कलाकार दुर्देव से पराजित हो गए !

धीरे-धीरे, दमा बढ़ाकर, वायु ने गवैए को बेसुरा कर दिया । अब गाने के वक्त, उसके गले में कफ के डले उझलने लगते और तान लेते ही इतने जोरों की खाँसी आती कि बेचारा स्वर और ताल, दोनों से चूकजाता !

उधर शक्ति ने वीणकार के हाथ, उँगली और दिमाग को कमजोर कर दिया । अब उसकी वीणा में न ‘आस’ रही, न ‘मूर्च्छना’—‘गमक’ न ‘जमजमा’ !

रोज भीख देकर जो लोग उन कलाकारों की इज्जत करते थे, उनमें से ज्यादातर तो गुणियों के अभाग्य पर अफसोस करने लगे। मगर कुछ लोग अपने चार पैसों के लिये पश्चात्ताप करते भी दिखाई पड़े—“हमारे चार पैसे खाकर भी कलाकार ने जिंदगी-भर स्वर से गा-बजाकर हमें क्यों नहीं प्रसन्न किया ?”

कलाकारों के स्वर्गीय निर्माण का सुख जो लोग फोकट ही में लिया करते थे, उन्होंने तो गुणियों के विरुद्ध आसमान सिर पर उठा लिया !

“ये दोनो कलाकार कभी थे ही नहीं।”—किसी छुटभैए गवैए ने अपने बड़े भाई के पतन पर प्रसन्नता प्रकट की !

“अब तक तो ये भूत को साधकर गाया-बजाया करते थे। इधर कई महीनों से वह भूत ज़रा सेंर-सपाटे को चला गया है, और इन ‘बने उस्तादों’ की कलाई खोलता गया है !”

जनता ने कहा—“बेसुरे कलावंत सड़क पर चिल्लाते क्यों हैं ?”

राजा ने अंदाज़ लगाया—“अच्छे कलाकार इतने नीचे गिर ही नहीं सकते। ये ढोंगी हैं, शराबी ! निकालो इन्हें मेरी रियासत से !”



बारह बरस तक उन कलाकारों ने इंदौर महानगरी को अपनी सुरीली, मोहिनी कला के जाल में फँसाकर रक्खा था !

बारह बरस तक उन्हीं महान् कलाकारों को, उसी महानगरी के बाहर, एक भुतड़े तालाब के किनारे, पणकुटी बनाकर अप्रशंसित, अपमानित और अनाश्रित जीवन बिताना पड़ा !

आखिर, एक दिन, उन दोनों ने विचार किया कि लेन-देन की यह दुनिया अच्छी आत्माओं के अयोग्य है ।

और, एक दिन इंदौर महानगरी में हड़कंप मचा कि शैतान कलाकार पुनः आ गए, और राजाज्ञा के विरुद्ध सड़क के उसी कोने में गा-बजा रहे हैं ।

छुटभैए दौड़े—फोकटोपासक लोग ।

बड़भैएदौड़े—अधिकारीगण !

यहाँ तक कि इंदौर के महाराज भी, स्वयं, राजाज्ञा भंग करनेवाले का कठोर शासन करने को दौड़े !

मगर वाह ! आज वे दोनों कलावंत कला की मूर्ति बने हुए थे ।

मिलकर मारनेवाले दैव-दूत—वायु, शक्ति, तेज—आज कलाकारों के विकास में कोई बाधा न डाल सके । भीमपलासी का स्वर, दिन का तीसरा पहर—एक ने वीणा और दूसरे ने गले से, चारों ओर हाहाकार पैदा कर दिया !

राजा-प्रजा, छुटभैए-बड़भैए कलावंत की वह दिव्य मूर्ति देखकर दंग, विमुग्ध और जड़वत् रह गए ।

उन्हें होश आया तब, जब कलाकारों ने संगीत-समाधि ले ली ! कला-समाधि !

स्वर के तारों पर चढ़कर कलाकारों के प्राण स्वर्गीय हो गए.....!

❀

❀

❀

होश में आते ही महान् इंदौर नगरी ने उन कलाकारों को नमस्कार किया। हृदय से अपनाया—“हमारे कलाकार !”

द्वेषी छुटभेयों ने सिजदा करते हुए कहा—“बाह चस्ताद !”

प्रसन्न होकर उदार महाराज ने भी आज्ञा दी—“गंदी सड़क का यह कोना ऐसे कलावंतों का स्थान नहीं इन्हें मेरे शीश-महल में ले जाओ। आज से राज्य का मुख्य कलाकर नियुक्त कर मैं इनका पुरस्कार प्रतिवार हजार स्वर्ण-दीनार मुकर्रर करता हूँ !”

उंचे पद पर बैठने के लिये जब राज्य-अधिकारी उन जीवन्मुक्त कलाकारों को सादर उठाने लगे, तब उनके हाथ क्या लगा ? क्या ?

एक टूटी वीणा और टूटे दिल दो !
